भूखों की बस्ती

बङ्गालके श्रेष्ठ कहानीकारोंकी अकाल सम्बन्धी कहानियाँ
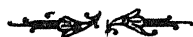
अनुवादक—

शिव नारायण शर्मा

छेदीलाल गुप्त

जनवाणी प्रकाशन

३६, वाराणसी घोष स्ट्रीट,

कलकत्ता—७

प्रथम संस्करण] १९४९ [मूल्य १)

प्रकाशक

जनवाणी प्रकाशन

३६, वाराणसी घोष स्ट्रीट,

कलकत्ता - ७

मुद्रक

श्री हजारीलाल शर्मा

जनवाणी प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स लि०,

३६, वाराणसी घोष स्ट्रीट,

कलकत्ता - ७

भूखों की बस्ती

श्री नवेन्दु भूषण घोष

आखिर, काले बादल वाली रात का अन्त हुआ !

फुट पाथ पर—जहाँ जराछ त् है—वहीं वे रात के अन्तिम प्रहर की कामना कर रहे थे—हो सकता है नये दिन के प्रकाश में खाना मिल जाये, जीवन बच जाये, शायद।

वे सोये थे अनगिनत, असंख्य स्त्री और पुरुष, अधनंगे, अध लेटे बच्चे और बूढ़े—रक्त हीन, सूखी चमड़ी वाले जीवित-नर कंकाल ! वे ही सोये थे। मीठी नींद में नहीं, कमजोरी की वजह, भूख की वजह।

नीले, पीले कई रंगों के बादल। रिमझिम बूँदाबूँदी, मेघ से छाये सूर्य का अस्पष्ट-सा प्रकाश शहर के कोने कोने में निखरने लगा।

और वे सोये थे। कलेजे पर डेढ़ वर्ष का-हाथ भर का शिशु सूखे हुए स्तन को चिचोर रहा था। दाहिनी ओर ६ वर्ष का भोला, बाईं ओर दस वर्ष की लड़की, दुर्गा।

'माँ !'—भोला उठ बैठा।

क्षीण कण्ठ से तारा ने कहा—'क्या है रे ?'

'भूख लगी है'

तारा मौन रही।

'माँ, ए माँ सुनती क्यों नहीं ? कह रहा हूँ भूख लगी है'

दस वर्ष की उम्र है तो क्या, दुर्गा को अक्ल है। वह माँ की मौनता के कारण को अनुमान से ही समझ गयी—'भूख लगी है तो क्या करे रे, सबेरा होने दे, कहीं कुछ मिल ही जायेगा।'

'नहीं, अभी मैं खाऊँगा!'

'चुप रह।'—दुर्गा ने डाँट दिया।

'तू चुप रह, हरमजादी'—भोला ने भी डपट दिया।

तारा मौन ही रही। बाल बच्चों का क्या कसूर ? स्वयं भूख की ज्वाला में उसकी अंतड़ियाँ जल कर भस्म होती जा रही हैं, शरीर गलता जा रहा है। भूख की भयंकर यंत्रणा को तारा जानती है। पर मौन रहने के सिवा और कोई उपाय ही नहीं।

तारा भोला की ओर देखने लगी। कंकाल मात्र भोला, पेट में पीलही, छाती की पतली और कोमल हड्डियाँ विचित्र-सी दीख रही हैं गालों पर कुल्हड़, लकड़ी की तरह हाथ-पैर, शरीर का साँवला रंग मैल की वजह और भी घना हो गया है। और पीड़ा दायक दरिद्रता के आगमन से तारा की दोनों आँखें डब डबा आईं। दुर्गा का भी यही रूप। छाती पर पड़े बच्चे की ओर भी तारा ने देखा—शीर्ण—अति शीर्ण, नंगा, मांस का निर्जीव लोथड़ा। वह माँ के सूखे, कंकाल की तरह शरीर में बचे-खुचे रक्त का शोषण करने में व्यस्त है, स्तन चूस रहा है। पर प्राण पन से चेष्टा करने पर भी उसकी लालायित जिह्वा पर दूधकी एक बूँद भी नहीं टपक रही है। बच्चा रो पड़ा—क्षीण स्वर में।

[पाठक, अब उठो, आठ बज रहे हैं, अब गद्दे पर से उठा जा सकता है, क्यों ?

[उठ बैठो, पासके कमरेमें सुडौल कलाईमें पड़ी चूड़ियोंकी झंझार झंकृत हो रही है, उस सुमधुर शब्दकारणीको तो तुम पहचानते ही हो। वह चाय बना रही है।

[तुम्हारे सिरहाने के पास जो स्टूल पड़ा है उस पर नौकर आज का 'स्टेशमैन' रख गया है (अखबार पढ़ना हो तो अंग्रेजी-सच ?) आज रविवार है। उठा लो। अहा, आज तो बहुत-सी तस्वीरे हैं। भूखमरों की तस्वीरें। बहुत दुख की बात है। आज कल क्या हो रहा है संसार में। युद्ध की वजह से यह स्थिति है शायद, क्या किया जा सकता है ? ईश्वर को धन्यवाद—हम नौकरी कर रहे हैं; सरकार भी बड़ी दयालु है—रेशन देती है इसके अलावा हमारा मान सम्मान है, पहुँच है। अवश्य कुछ कड़ेपन की जरूरत पड़ती है। फिर भी ईश्वर को कोटिशः धन्यवाद।

[पन्ने उलटो। 'An All-India disgrace !' बात क्या है ? पढो। वाह खूब लिखा है। ऐसी लिखने की क्षमता केवल साहबों में ही है, वे अगर पथ न दिखायें तो हम भटकत रहें, क्यों ?

[पाठक, वही सुडौल हाथकी अधिकारिणी कमरेमें दाखिल हुई है। पद्म पर बिखरे प्रभात के ओस कणों के मानिन्द ओठों पर मृदु-मुस्कान, रात के जागरण की वजह आँखों के कोने में विद्युत की रेखाएँ। पाठक मुग्ध हो कर कहो—स्वागतम् देवी ! देवी हँस कर बोलेगी—धन्यवाद देव ! टेबल पर चाय का कप। कहो—यह तस्वीरें देखो। वे देख कर कहेगी —ओह, दुर्दिन आ गये हैं—चावल, दाल आजकल दुर्लभ हो गये हैं—

आह ! उत्तर में कहो—ठीक कहती हो, महीना शेष होने पर और तीन मन चावल खरीद लूंगा समझी ! सर हिला—अच्छा ।

[बाहर रिमझिम बूँदे पड़ रही हैं । अबरक की नाईं । हौले हौले हवा आ रही है, अस्पष्ट-सा प्रकाश भी । शरीर आलस्य की अनुभूति से अच्छादित है, और सामने सुन्दर नारी—जिसकी आँखों से मादकता ढलक रही है ।

[पाठक अखबार रख दो । चाय के कप से भाप उड़ रही है, सोने की तरह पीताभ चाय पिओ । एक सिगरेट सुलगा लो, सुरभित धूँए के तारतम्य को नृत्य-रत, सुक्ष्म शरीरा अप्सरा की भाँति लोप होने दो, लोप होता जाय—]

आस पास सब की बात चीत, कोलाहल तारा के कानों में गूंज रहा है ।

यह क्या बारिस हो रही है—कैसी करुण आवाज़ है—ओह !

'मुट्ठी भर भात दो—बासी भात !'

'घर द्वार सभी कुछ था भाई, सभी कुछ—'

'कई दिनों से अन्न की भेट नहीं—कई दिनों से—'

'चुल्लू भर माढ़ ही दे दे माँ, मौत भी नहीं आती !'

'माँ, खाने को दे,—भोला ने पुकार कर कहा ।

तारा हिलती डुलती नहीं, उसका सर चक्कर खा रहा है, आँखोंके आगे अँधेरा छाता जा रहा है ।

आने जानेवालोंकी भीड़-भाड़ बढ़ चली—यह महानगरी है—महानगरीके नागरिकोंकी भीड़भाड़ । वे हँस रहे हैं, बतरा रहे हैं—उनके पेटमें

अन्न है, खानेके लिये रोटियाँ हैं, शरीरमें रक्त है, तभी जीवित हैं, तभी हँस रहे हैं—अट्टाहास कर रहे हैं और इन्हीं स्वस्थ्य और जीवित नागरिकों के अगल बग़ल पास पड़ोसमें वे पड़े हैं—वे ही भूखमरे, क्षुधार्त नर-नारी !

'ओ बाबू, मुट्ठीभर भात दे दो माँ !'

दुर्गा को अक्ल है। वह पथिकों के प्रति आवेदन जताती है—'भूख से मर रही हूं बाबू।'

'अरे, वह आदमी मर गया'—जाने किसने कहा।

तारा ने फिर कर देखा। कुछ दूरी पर पचास बरस का एक बूढ़ा मर कर लकड़ी हुआ पड़ा था। उसकी आँखें खुली हुई थीं, स्थिर, रक्ताभ ? प्राचीन ममी की तरह, उसके पिचके-से गाल, मांस पेशियां सिकुड़ी-सी और शुष्क ! मुँह पर मक्खियाँ परम आनन्द से अनश्वर—मनुष्य के नश्वर आधार का भक्षण कर रही थीं।

'हमारी भी यही दुर्दशा होगी।' एकने कहा।

'मुट्ठी भर भीख दो, दया करो बाबू !' दुर्गा का स्वर जान पड़ा

'ओह, और नहीं' जाने कौन दीर्घ निश्वास खींच कर बोला।

[पाठक ! वायु के झोंके की वजह वह निश्वास तुम तक नहीं पहुंच सकती। और उससे तुम्हें मतलब ही क्या ! बेहतर है रेडियो का स्विच दबा दो। कुमारी सुचिन्ता सेन गारही हैं। संगीत की स्वर लहरी से तुम्हारा कमरा झंकृत हो उठे। वाह !]

केवल मधुसुदन ही निलज्ज नहीं है—भूख भी निलज्ज है। इसीसे कमला को भी लज्जा नहीं। सत्तर जगह फटी साड़ी से उसका अंग प्रत्यंग दीख रहा है। यौवन का कठिन और कोमल रूप।

मनुष्य को आँखें हैं। भगवान ने दी हैं। आँखों का काम है देखना। तभी हजारों आंखें कमला के शरीर पर पड़ती रहती हैं। कमला के बचने की आशा है—वह जीवित रह सकेगी ?

ताराने अपने आप को नीचे से ऊपर तक देखा—घुटने से ऊपर तक फटी-सी साड़ी। लज्जा उसे भी नहीं।

दुर्गा भी भोला की तरह अबूझ हो गयी है—'माँ अब सह नहीं सकती।'

'हाथ फैला कर मांग बेटी!' तारा पड़ी-पड़ी ही बोली। उसका शरीर गिरा जा रहा है वह उठ नहीं सकती। आज छ दिनों से उसने जीवित रहने लायक कुछ नहीं खाया। पिछले पन्द्रह दिनों से वह भूखी है।

'बड़े बाबू, दया करो, भगवान तुम्हारा भला करेगा बाबू!' भोला ने कहा। दुर्गा ने भी भोला के चुप होते ही सदा लगायी—'भगवान आप को राजा करे, मुट्ठी भर भात दो बाबू!'

बाबू जवाब तक नहीं देते।

आकाश पर घिरा मेघ फटता जा रहा है। धूप चमकने लगी है। करीब छ साल की एक नंगी लड़की फुटपाथ के एक कोने में बैठी रो रही है। उसके कलेजे में दम नहीं, गला फाड़ कर नहीं रो सकती, पतली लकड़ी के फट्टे-से उसके हाथ पैर, सर पर से बाल उड़ गये हैं—पीप और पीले मवाद से गद्गदाया उसके सरके जख्म पर मखियाँ भिन-भिना रहीं हैं। वह हाथ पसार कर कुछ कहने की चेष्टा कर रही है। यह समझ कर भी कोई नहीं समझता। इतने बड़े संसार में भी उसका कोई नहीं। उस के माँ-बाप उसे छोड़ कर कहाँ गये? क्यों गये? सो भी वह नहीं जानती। शायद हाथ-पैर हिला कर वह बच्ची रोटी चाहती है।

'भूख से मरी जा रही हूं—बचाओ,'—दुर्गा बोली ।

'वाह ठीक जगह पर पहुँच गया हूँ ।' एक नवयुवक ने कहा । युवक के साथी के कन्धे पर केमरा लटक रहा था । जल्दी से वह केमरा खोल फोटो खींचने के लिये प्रस्तुत हुआ ।

'जल्दी, रमेश बादल घिरता आ रहा है ।'

'हाँ, हाँ यह लो—हो गया ।'

क्लिक ।

चार फोटो खींच लिये उसने ।

[पाठक, कल का 'स्टेशमैन' या 'आनन्दबाजार' खरीदना । यह फोटो उसमें देख सकोगे । उसमें देख दीर्घ निश्वास फेंक 'आह' भरना । हमे अपनी उदारता का परिचय देने का सुअवसर अब मिला है, क्यों ?

[यह लो, तुम्हारे एक मित्र आये हैं । बैठाओ । विश्व-राजनीति पर बहस करो । साम्यवाद अच्छा है या साम्राज्यवाद ? रसिया की विजय से क्या फायदा ? भारतवर्ष के सम्बन्ध में भी कुछ बातचीत हो सकी है । खाद्य-समस्या का विषय भी कुछ गम्भोर है ही । बहस जम जाये ।]

पटल को बर्दाश्त नहीं । घड़ी भर में ही उसके मस्तिष्क में अग्नि की लपटों को तरह भूख को ज्वाला धधकने लगी । वह उठ बैठा ।

पूरब की ओरसे एक मोटर आ रही थी । वह उछल कर सामने जा पड़ा । ड्राइवर बड़ा कुशल था । झटपट उसने ब्रेक मार दी और तेजी के साथ बगल से निकल गया । पटल बेहोश हो गया ।

खून—चिल्ला चिल्ली—एक्सीडेन्ट—पुलिस

सर पर पानी डालने से खून का प्रवाह रुका । पटल होश में आया ।

लोग उसे अस्पताल की ओर ले चले। वह मरा नहीं।

गुस्से में वह मन ही मन कह उठा—यदि ईश्वर को एकबार पकड़ पाता। पर ईश्वर चालाक है। अपने को पकड़ने वालों के लिये उसने सभी रास्ते रोक दिये हैं।

तारा सब कुछ देख रही है। मूक शिशु को उसने हृदय से चिपका लिया। उसके हृदय की धड़कन द्रुतगति से धक्-धक् करने लगी।

दुर्गा करुण कण्ठ से कहती जा रही है—'दया करो बाबू।'

भोला रोता रोता बोला—'कुछ नहीं मिलता माँ! कोई नहीं सुनता बापरे, बाप!'

'सुनेंगे रे—सुनेंगे'—तारा ने उत्तर दिया।

'खाक सुनेंगे—मुझे खाने को दो?'

'चुप रह भइया।'

'नहीं, चुप नहीं रहूंगा'—वह खड़ा होकर अपने पीठ से सटे पेट पर हाथ थपथपाने लगा—'दे मुझे खाना, देती है या नहीं।'

तारा फूट-फूट कर रोने लगी। वह सांत्वना के शब्दों को ढूंढ़ नहीं पाती।

एक बूढ़ा आदमी वहाँ खड़ा हो गया। पाकिट से एक इकन्नी निकाल उसने उसकी हथेली पर रख दी।

भोला चील की तरह झपट कर क्षणेक जाने क्या सोचने लगा। तत्काल दुर्गा चिल्ला उठी—'भोला, भइया—ठहर!'

पर भोला निगाहों को पार कर गया—अदृश्य हो गया।

दुर्गा रो पड़ी—'कुत्ता, कुतिया के पेटका कुत्ता।'

'चुप रह बेटी ! तुझे भी देगा कुछ।'

'ईंट पत्थर देगा। वह सब खा जायेगा वह कुत्ता है—मरेगा, जरूर मरेगा।'

'दुर्गा !'—तारा ने डपट दिया।

दुर्गा के पिच के कपोलों पर से आँसू की धार बह चली। मुंह फेर वह पुनः कहने लगी—'दया करो माई-बाप, दया करो—'

दिन चढ़ रहा है। आकाश फिर मेघ से घिर गया। वर्षा की बूंदें फिर पड़ने लगीं—रास्ते पर भीड़-भाड़, कोलाहल—हँसी, अट्टाहास ! दूर पर कन्ट्रोल की दूकान के सामने कतार में अनगिनत नर-नारी की भीड़। ठीक १२ बजे दूकान खुलेगी। उस बूढ़े की लाश उसी तरह पड़ी है, मक्खियां उसके मुँह पर से हट अब आँखों पर भिनभिना रही हैं।

[पाठक, आज रविवार है आज खाने पीने के लिये अच्छी अच्छी चीजों की व्यवस्था है न ? ईश्वर को धन्यवाद जो हम लोग सम्मानित है, पहुंच है। अपने उस—डेपुटी कमिश्नर मित्र को तेल और बढ़िया चावल की व्यवस्था के लिये कल एक बार और कह देना और अगर पूर्व परिचित दरोगा से मुलाकात कर सको तो बेहतर है। सच ईश्वर है, तभी हम खा-पीकर बचे हैं। अगर उसका अस्तित्व नहीं होता तो हम लोगों का क्या होता ? मैं कल्पना कर बार बार भयभीत हो उठा हूँ। अगर रास्ते पर पड़े गरीबों की तरह तुम्हारी दशा होती तो ? तो तुम्हारी वह तनी चमड़ी सूख कर झुर्रा जाती, फूले गालों पर का कौमार्य नष्ट हो जाता। दोनों आंखें गढ़हे में धंस जातीं और शरीर की हड्डियां निकल आतीं। क्रमशः अवश्य तुम भी मृत्यु की ओर अग्रसर होते। डर लग रहा है शायद। तब

छोड़ो। ईश्वर बड़ा दयालु है नहीं तो हमारी तुम्हारी भी यही दशा होती।

[वाह, आकाश घिरता आ रहा है। वर्षा की बूंदे भी जगत पर छाये मेघ की छाया पार कर संगीत की सुमधुर झंकार की तरह रिमझिम रिमझिम पड़ रही हैं। ऐसी अवस्था में मन कुछ और चाहता है—चाहता है न ?

[रसोई घर से सुस्वादु भोजन की सुगन्ध आ रही है, क्यों ?

[पाठक, तुम्हारी देवी आयी है। बोलो—नमिता बैठो।

[क्यों ?

[एक गीत गाओ !

[हूँ, अभी तक भोजन तैयार नहीं हुआ।

[वह रसोइया कर लेगा, तुम बैठो, एक गीत गाओ !

[क्या गाऊँ ?

[ऐसे समय क्या गाया जा सकता है ?

[गीत शुरू हो जाये।

जिन्दगी मौज मजा का नाम..................

[पाठक ! गम्भीर अनुराग से कोकिल कण्ठी गायिका की नरम कलाई पकड़ अपनी ओर खींच लो। जिन्दगी मौज मजा का नाम है, मानवता चाहे कराहती हो, पीड़ा से चिल्लाती हो, रोती हो रोने दो, कलपने दो, बिलखने दो !]

'रो रो, बिलख, कलप—मैं क्या करूं'—तारा ने कहा।

'क्या करूं माँ !'—दुर्गा रोती हुई बोली

तारा सोच नहीं पाती कि वह सान्त्वना किन शब्दों में दे। इसी समय

भोला लौटा। दुर्गा उसे देखकर तड़प उठी मानो विद्युत की गति उसमें आ गयी हो—बोली—'क्या लायारे! दे दे, थोड़ा दे।'

'कहाँ कुछ लाया हूं'—भोला ने डपट कर कहा

दुर्गा को विश्वास नहीं हुआ—'दे भइया, मरी जा रही हूं—मैं तेरी बहन हूं न!'

'चार पैसे में कितना, क्या मिलेगा री हरामजादी?'

दुर्गा गुस्से से तमतमा उठी—'दरिद्र, पेटू, हरामी सब खा गया माँ, री माँ! मेरे लिये कुछ नहीं लाया।'

'गाली नहीं दे कहे देता हूं।'

दूंगी हजार बार दूंगी—पेटू, कुत्ता!' कह कर दुर्गा ने एक धौल भोला के पीठ पर जड़ दिया क्षण भर में ही दोनों जानवरों की भाँति आपस में लड़ पड़े।

'माँ मुझे मार डाला, अरे बाप!'

तारा रोती रोती उठी और दोनों को अलग करने लगी। पर किसी ने एक दूसरे को नहीं छोड़ा। हाँफती—काँपती तारा ने कहा—'तेरे पैर पड़ती हूँ भोला, छोड़ दे बेटा—दुर्गा!......' और वह जमीन पर गिर पड़ी।

'बाहरे, मुझे जरा भी नहीं दिया इसने, मैं छोड़ दूंगी! मैं मरी जा रही हूँ सो क्यों नहीं देखती?'

तारा जोर जोर से रोने लगी,—'देख रही हूं, क्या करूं? भगवान को पुकार!'

'भगवान!' दुर्गा ने भगवान का नाम अवश्य सुना है पर उसकी पुकार सार्थक होगी—इसमें उसे सन्देह है।

दुर्गा ने रास्ते की ओर अपना मुंह फेर लिया। उसकी आंखों से आंसू की धार बह रही है। दबी आवाज में वह कहने लगी—'मैं मरी, आह कुछ खाने को दो बाबू!'

केवल दुर्गा ही क्यों वहाँ और जो कोई थे वह भी उसी की तरह रो रो कर 'रोटी रोटी' चिल्ला रहे थे।

सैकड़ों लोग आ और जा रहे थे, ट्राम, बस, रिक्शा, मोटर, आकाश पर दो जहाज हवाको चीरती चारती निकल गयी सभी चल रहे थे केवल विवश पड़ी थी भूखमरों की टोली, वे मशीने जो रोटी के टुकड़े पर चलती हैं।

रिमझिम बूंदे पड़ रही हैं। बादल अवश्य कुछ साफ हो गया है। लेकिन पूरब की ओर काले मेघ के टुकड़े जम रहे हैं। दूर पर, कण्ट्रोल को दूकानों पर नर-नारी की कतार और भी लम्बी हो गयी है। उनका कोलाहल हवा के झोंकों के साथ फैल रहा है।

'ऐ सुनो, सुनो,—सर पर छाता लगाये एक बंगाली सज्जन के साथ एक मारवाड़ी सज्जन वहां उपस्थित हुए।

बगाली ने कहा—'तुम लोग अगरवाला बाबू की चौराहे की कोठी में चलो, वहां खाना मिलेगा।'

तेज हवा की वजह जैसे सूखे पत्ते वन-प्रान्त में मरमरा उठे।

मारवाड़ी ने कहा—'देर मत करो, जल्दी आओ।'

'चल मां!'—भोला उछल पड़ा

'जल्दी चल माँ'—दुर्गा भी बोल उठी

तारा उठ खड़ी हुई। पैर थर थर कांपने लगे, आंखों के आगे अंधेरा छा गया। उसने बड़ी मुश्किल से अपने को सम्हाला।

सब के सब उठ खड़े हुए। बहुत तो दौड़ भी पड़े। भूख की ज्वाला में, अन्न की आशा ने नव जीवन ला दिया। वे जोर जोर से बातें करने लगे, एक पर एक कदम बढ़ाने लगे—जल्दी, जल्दी जल्दी।

सिर्फ पड़ी रही उसी पचास वर्ष के मनुष्य की लाश।

और भी दो प्राणी पड़े रहे एक बूढ़ी, वह बोरे का-सा एक गंदा वस्त्र लपेटे हुए है, उसीके सामने करीब पैंतोस वर्ष का एक मनुष्य फुट-पाथ पर हाथ पैर फेंक, आँखे बन्द किये पड़ा है। बीच बीच में वह आँखें खोलता और जोर जोर से साँस ले रहा है।

जो अन्न के लोभ में दौड़ रहे थे उन्हीं में से एक आदमी ने फिर कर कहा—'अरे बुढ़िया तू नहीं चलेगी ?'

बूढ़ी ने सर भर हिला दिया।

'काहे ?'

बूढ़ी ने पड़े हुए बे-वश की ओर अँगुली का संकेत कर दिया।

'क्या हुआ है ?' थोड़ी देर चुप रह कर उसने फिर पूछा—'वह तेरा कौन है ?'

बूढ़ी ने हँस कर कहा—'वह मेरा लड़का है, दस महीने कोख में रखा है।'

वह दौड़ पड़ा—आगे बढ़ती भीड़ को लक्ष्य कर, चल पड़ा।

[पाठिका ! आकाश पर इन्द्र धनुष उदित हुआ है, उसके सौन्दर्यको तुम नहीं देखोगी ? खिड़कियाँ खोल दो। अबरक की नाईं—रिमझिम बरसती बूँदें पड़ रही हैं। वाह, शरीर अलसाया हुआ है न, अँगड़ाई लो। खिड़की से पथ के छोर पर दृष्टि टिका दो। रेशम की तरह मुलायम केश हवा की

तेज लहरकी वजह तुम्हारे मुख मण्डलपर बार बार घिर रहे हैं, उन्हे अँगुलियों से ऐसे हटाओ जैसे काले बादल के टुकड़े को पूनो का चाँद हटा देता है।

[अपने घर की बातें एक बार सोचो। सभी हैं। तुम सुखी हो। पास ही खटोले पर पड़ा है तुम्हारा चार वर्ष का मोम सा पुतला, तुम्हारे पति के हृदय का चाँद। उसकी ओर एक बार सस्नेह से देखो। एक दिन वह बड़ा होगा। विलायत जायेगा, आई. सी. एस. होकर लौटेगा, न ? जरूर। पाठिका ! आज तुम्हें रिहर्सल में जाना है। देश के दुखी नर-नारी के सहायतार्थ चैरेटी शो होगा, क्यों ? ऐसे काम में तुम्हारा कदम आगे होता है, सो मैं जानता हूँ ? तुम्ही, लड़कियों को गीत सिखाओगी, नृत्य सिखा-ओगी। पाठिका, तुम देश के दुखो नर-नारियों के असह्य चीकार सह नहीं सकती', यह भी मैं जानता हूँ। तुम मेरा प्रणाम स्वीकार करो, ग्रहण करो।]

धूएँ की नाईं झीने बादल का टुकड़ा उड़ता जा रहा है, उड़ता जा रहा है।

बारिस में भीगती बच्चों को लिये तारा किसी तरह पहुँच गयी। उसका शरीर टूट ही रहा है, शक्ति नहीं।

सामने की ओर देख कर तारा हताश हो बैठ गयी। भूखमरों की भीड़ भाड़, उन्मतत्ता ! धक्का-धुक्की, मारा मारी, आर्तनाद, गाली गलौज। सभी आगे प्रवेश करना चाह रहे हैं। जो अपेक्षाकृत दुर्बल हैं, वे पीछे बैठे हैं। तारा भी बैठी है।

दुर्गा ने रो कर कहा—'चल न माँ, आगे चल।'

भोला हाथ पकड़ घसीटने लगा—'चलो माँ, किनारे-किनारे आगे निकल चलें।'

तारा ने अस्वीकृति सूचक सर हिला दिया—'मर जाऊँगी बेटी! इससे अच्छा है ऐसे ही रहना, भले हो जरा देर से मिले।'

'सब खतम हो जायेगा तो।'—तारा रोकर बोली—'पैर पड़ती हूँ माँ, चल!'

तारा लेट गयी, बोली—'अरे पगली, बुलाकर ले आया है न।'

बारिस में उनका सर्वाङ्ग भीज गया है।

दो घण्टे बाद। मारवाड़ी की कोठी का फाटक बन्द हो गया। बहुत से भूखे ही रह गये। इतनी भीड़ होगी, आशा नहीं थी।

निराश आर्त्तनाद कर उठे।

बंगाली बाबू फाटक के पास आकर बोले—'आज सब खतम हो गया, कल आना।'

निराशों का कोलाहल बढ़ गया। फिर भी फाटक नहीं खुला, नहीं खुला। लोहे का फाटक तोड़े से भी नहीं टूट सकता।

कल? वे एक अजीब हंसी हंसने लगे। कल? कल तो बहुत दूर है, ब-हु-त—दूर।

दुर्गा ने माँ का हाथ पकड़ घसीटते हुए कहा—'माँ सब खतम हो गया?'

तारा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

दुर्गा भीतर ही भीतर रो उठी—'कब से तुझे कह रही थी, सुना ही नहीं। तू डायन है, भूखे मुझे मार डालना चाहती है!'

भोला भी रो रहा था—'माँ खाने को दे—दे न!'

दुर्गा गरज कर बोली—'मर जा, मर जा पेटू, चार पैसे की पकौड़ी खा कर भी तेरा पेट नहीं भरा?

भोला बिगड़ खड़ा हुआ—'गाली मत दे, चुड़ैल कहीं को।'

पुनः भाई बहन की लड़ाई शुरू हो गयी। गोद का बच्चा भी रो पड़ा तारा उठ खड़ी हुई—थर-थर काँप रही है।

'अरे मारपीट मत कर राजा बेटा, आ कुछ मिलेगा ही।'

भाई बहन को छुड़ाने पर उसका दम अटक जाता है।

बूढ़ी अँगुली टेढ़ी कर दुर्गा ने कहा—'घण्टा, घण्टा मिलेगा।'

'दो पैसे दे दो, बाबू दया करो।'—भोला ने कहा।

तारा एक पतली गली में मुड़ी। कुछ दूरी पर एक कूड़े का टब दीख पड़ा। दुर्गा और भोला दोनों साँस रोक कर दौड़ पड़े, उसी सड़े गले कूड़े करकट के ढेर पर गिर गये। एक पत्ते पर चावल के कई दाने चिपके थे लपक कर तारा ने उसे उठा लिया, दुर्गा भी झपट पड़ी उसके सूखे रोटीके टुकड़े पर और भोला उस जूठे पत्ते को उठा बड़े मनोयोग से चाटने लगा।

इन से कुछ फासले पर एक कुत्ता सो रहा था, उसने उपेक्षा से इन्हें देखकर दूसरी ओर मुँह फेर लिया। जैसे उस खाद्य का उसे तनिक भी लोभ नहीं।

फटी साड़ी के आँचल से रोटी पर लगी गन्दगी को पोंछ, दुर्गा ने उसे दो टुकड़ों में विभाजित किया जो बड़ा टुकड़ा था उसे आप ले लिया और छोटा भोला की ओर बढ़ा दिया।

भोला की शिकायत हुई—'मुझे इतना कम?'

दुर्गा गर्व से बोली—'जितना दिया वह बहुत है, तुम ने मुझे पकौड़ी दी थीं?"

'माँ, ठीक नहीं होगा।'

'अरे ठहर ठहर चल बड़े रास्ते पर निकल चल। यहां कुछ नहीं मिलेगा।'

ताराके शरीर मे शक्ति नहीं।

दुर्गा और भोला उसी रोटी के टुकड़े को चबा रहे थे। उनके पीले दाँत आपस में टकरा रहे थे जैसे वे प्रतिरोध की गति का उदाहरण दे रहे हों।

गली के अन्तिम सिरे पर के मकान के दरवाजे पर पहुँच कर दुर्गा ने चिल्लाकर कहा—'बहू माँ, दया करो, एक मुट्ठी भात···मरी जा रही हूँ।'

एक बूढ़ी दरवाजे पर खड़ी थी, वह उन्हें देखकर शायद विचलित हो उठी। उसने आवाज लगायी—'दीदी, ओ नीलू!'

एक तेरह चौदह वर्षकी युवती उसके सामने उपस्थित हुई—'क्या है?'

'कुछ घर में हो तो मुट्ठी भर देदे।'

'वाह, तुम बड़ी दया करने वाली बनी हो, क्या दें? यहाँ क्या है?'—अगर तुम इस तरह दया दिखाने लगोगी तो हम लोगों को एक दिन इसी तरह....कहती हुई वह भीतर चली गयी। क्षणेक बाद एक कटोरे में 'दाल भात' ले लौटी और कटोरा दुर्गा की ओर उसने बढ़ा दिया। भोला और दुर्गा दोनों कटोरे पर एक साथ ही झपट पड़े। सब का सब ज़मीन पर जा गिरा। पुनः दोनों एक पर एक सवार हो ज़मीन से उठा बीन बीन कर निगल ने लगे।

'चलो भीतर चलो!'—युवती ने कहा।

'चल रे!'

दरवाजा बन्द हो गया।

तारा उन्हें निगलते देखकर अपने आप को रोक न सकी बोली—'कुछ मुझे दे। मैं मरी जा रही हूं, बेटी! बड़ा अच्छा लग रहा है न?'

दुर्गा सुन कर भी अनसुनी कर गयी।

'अरे सुनती है, मुझे देना थोड़ा?'—तारा की आँखें भर आयीं। माँ का दर्द किसी ने न समझा।

[पाठक! आज मेट्रो में अच्छी पिक्चर है। इसके अलावे दो एक से तुम्हें मुलाकात भी करनी है। गृहणी को शृङ्गार करने के लिये कह दो।

[पाठिका! अब बारिस कम गयी है। बादल भी फट गये हैं। समय हो गया है, उठो। आज चैरेटी शोका रिहर्सल है न? ड्राइवर को कह दो कार लाये। इसके बाद दर्पण के सामने जाओ। दर्पण कहेगा—सुन्दर हो, सुन रही हो? अपने घने अस्तव्यस्त काले बालोंकी वेणी गूँथ, अपने रक्तिम मुख मण्डल पर क्रीम और पाउडर लगाओ। तुम्हारे चम्पक के सदृश्य ओठों के कोने में मुस्कान बिखर जाये। डर किस बात का है। तुम्हारा रक्तिम मुख मण्डल तो रोटी के अभाव में विकृत नहीं हो सकता? तुम्हारा सौन्दर्य चिरस्थायी है। तुम क्यों डरती हो? डर तो उन्हें है जो दरिद्रता के पाप के भागी हैं।

[पाठिका! यदि मेरी बातों में तुम्हें अश्लीलता मिले, यदि तुम सोचती हो मैं असभ्य हूँ तो मुझे क्षमा करो।]

फिर वही फुटपाथ।

तारा सो गयी है। उसका शरीर शिथिल होता जा रहा है। फुट पाथ पर चारो तरफ कीचड़ ही कीचड़। तारा की गोद में पड़ा बच्चा रो पड़ा। उसने उसके मुंहमें सूखा स्तन डाल दिया। बच्चा आग्रह से उसे चूसने लगा। लेकिन पुनः वह रोने लगा।

बे-दम हो गयी आवाज में तारा ने कहा—'दुर्गा ?'

'क्या है ?'

'एक चुल्लू पानी लाकर इसके मुंह में दे दे रे !'

'अच्छा।'

भोला भीख मांग रहा है। रास्ता में आने जाने वालों की काफी भीड़ है सजे धजे, युवक-युवती-नर नारी—ट्राम और बसों में भीड़ भाड़—हँसी, कोलाहल।

सिनेमा के सामने भी काफी भीड़ लगी है। नयी पिक्चर चल रही है।

ठण्डी हवा की वजह आमोद-प्रमोद करने वाले व्यक्ति सिगरेट का कश खींच रहे हैं।

तारा सोचती है—भूख से तिल मिला कर अतीत की बातें—छोटा गाँव, एक झोपड़ी, नव-जवान पति, धान का खेत—सभी कोई था, सभी कुछ था।

[पाठिका ! सभी तो आ गये हैं ? मिस दास, मँजू, अमिता, चित्रा, सुजाता, मि० सरकार, सेन, ललिता सभी-सभी। हाँ सभी आ गये हैं। वे बहस कर रहे हैं। युद्ध की अवस्था कैसी है ? बंगाल के इस दुर्दशा का उत्तर दायी कौन है ? (मि० सेन P० H० D०, नहीं ?) चैरेटी में कितनी आमदनी हो सकती है ? ड्रेस के लिये आर्डर दे दिया गया है न ? शो 'इम्पायर' या 'ग्लोब' में—कहाँ होगा ?

[पाठिका ! तुम बहस छोड़ो। संगीतज्ञों को सामने बैठाओ। मृदंगके बोल के साथ सितार के तार झंकृत हो उठें। अमिता को सामने खड़ी कराओ, सिखाओ—उर्वशी-नृत्य ! दाहिना पैर धीरे से बांये पैर के बगल

में रखो, दाहनी हथेली-पताका-मुद्रा कार करो। ग्रीवा बायीं ओर नतकर, विकसित पद्मकी मुद्राकार हथेली से तुम अपने यौवन की ओर, अंग प्रत्यंग की ओर संकेत करो। तुम्हारी मधुमय कटीली आंखों के कोनेमें अग्नि प्रज्वलित हो उठे। उर्वशी की नुपुर की झंकार से, मस्त-सूर-सभा झंकृत हो उठे। नृत्य प्रारंभ कर दो तब]

वह आदमी मर गया। उसकी बूढ़ी मां बगल में सो रही है। कमला के बाप ने पूछा—'तेरा बेटा कैसा है?'

बुढ़िया उसकी ओर ओछी निगाह से देख, बोली—'मर गया ..'

तारा धुँधली आंखों से देख रही थी कि उस पार, फुटपाथ पर—एक आदमी भोजन बना रहा है। भोला भीख मांग रहा है।

शाम हो गयी है। महा नगरी में बत्तियाँ नहीं जलेंगी।

[पाठिका! तुम्हारा नृत्य, वाह खूब। उर्वशी, तुम्हारी तुणीर में तो कामदेव का तीर भी नही है—है आंखोंमें मादकता, वाह खूब नाचती हो।]

पैर चापकर चलने वाले पथिक की तरह रात आयी। कोलाहल कम होता जा रहा है।

फिर पानी बरस ने लगा। आने जाने वालों की भीड़ कम हो गयी है। किसी की फुस फुसाहट भरी आवाज़ आ रही है। अन्धेरे में औरतें गलियों के भीतर खड़ी हो गयी हैं। बीच बीच में आवाज गूंज रही है चोर-चोर पुलिस की ह्विसल।

एक आदमी कमलाको धकियाता सामने आ खड़ा हुआ—'अरे भात खायेगी?'

'दो—कहाँ है, दो भइया!'—सभी एक स्वर में चिल्ला पड़ीं।

दुर्गा मां को धकेल धकेल कर कहने लगी—'माँ खाने को दे मां !'

भोला अचानक कय करने लगा।

एक आदमी ने इशारे से दुर्गा को पुकारा—'मेरे साथ आ।'

तारांने दांत पर दांत चढ़ाकर कहा—'जाती क्यों नहीं री'

कमला के बापने कहा—'कमला, तू जा री, जा न ?'

कमला उठ खड़ी हुई। चारों तरफ अन्धेरा। उसी घनिभूत अँधेरे में वे पड़े रहते हैं, अनगिनत—नर-नारी। कई लड़कियाँ और अर्द्ध वयस्क गली में चली गयीं।

भोला 'कय' करता हुआ रो रहा था। पूरब की हवा बह चली है—ठण्ड लग रहा है। भोला फुटपाथ के किनारे जा मल उगलने लगा। काले बादल, काली आँखें—पानी बरस रहा है।

पुलिस के बूट का शब्द—खट्—खट्—खट्

[पाठक, पाठिका। नींद आ रही है ?]

रात चढ़ने पर कमला, दुर्गा लौटी-उनके हाथों में भात और तरकारी का दोना है।

'लाई है भात ?'—उनके माँ बाप उत्तेजित हो उठे"

'हाँ'

'दे, मुझे दे।'

'बड़ी आयी, शरीर मैंने बेचा, तुम्हें दे दूँ ?—मैं खाऊँगी-मैं !'

कमला बैठ कर ग्रास निकलने लगी। उसके बाप-माँ उस पर टूट पड़े—दे, दे, मुझे दे बेटी ! हम मरे जा रहे हैं नमकहराम !'

भात ! तारा की चेतना जाग उठी—भोला को ज्ञान नहीं। कलरा की अन्तिम अवस्था। दुर्गा बैठी भात खारही थी। तारा पड़े पड़े ही घुलट कर दुर्गा के नजदीक गयी—'दे दे, एक कौर मुँह में दे दे बेटी !'

'हट हट, मर जा !'—दुर्गा पत्तल हाथ में उठा आगे खिसक गयी।

तारा यथा स्थान मुंह के बल लेट गयी । गोद के बच्चे की आँखें खुल गयीं वह रो उठा। उसने टटोल टटोल कर बच्चे को छाती से लगा लिया तारा की आँखें कुछ नहीं देख पातीं केवल वह देख रही है—हरे हरें, धानके खेत, अपनी झोपड़ी, जवान-पति। वह सर पर हाथ ले जाकर कुछ कहना चाह रही थी लेकिन कह न सकी—और पूर्ववत् टटोल कर उसने भोला के शरीर पर हाथ रख दिया—भोला का शरीर बर्फ की तरह ठण्डा हो गया है-बिल्कुल ठण्डा। वह पुकारने की चेष्टा करने लगी—पर आवाज उसके मुँह से न निकली।

रात और भी घनिभूत होती जा रही है। तारा की साँस की गति रुक गयी पर गोद के बच्चे की स्तन चूसने की चटकार अब भी आ रही है।

[पाठक, पाठिका ! आँखें झंपने लगीं हैं, सो जाओ, शुभ रात्रि ! तुम सो जाओ।

[मुझे भी नींद आ रही है। पर मैं सो नहीं सकूंगा। सोते, जागते-हमेशा। मैं एक स्वप्न देखता रहता हूं, मेरा कलेजा भयसे काँप उठता है आजकल शायद कल्कि ने अवतार ले लिया है, लगता है जैसे प्रलय का समय आ गया है—अब प्रलय होगा, यह हुआ, इसी क्षण।

[तुम सो जाओ, पृथ्वीके सभी जीव जन्तु सो रहे हैं—तुम क्यों नहीं सोओगे लेकिन मैं नहीं सो पा रहा हूं—सोचता हूं—प्रबल वेगसे झकझोर कर सभी सोये को जगा दूं—कोई भी नहीं सो पाये।

[पर मैं असमर्थ पाता हूं अपने को। अतएव सो जाओ, किसी तरह का भय नहीं, लेकिन तुम्हीं कहो—मैं कैसे सो सकता हूं ?]

अंगार

श्री प्रबोधकुमार सन्याल

मैं आठ वर्ष से दिल्ली में नौकरी कर रहा हूं। कलकत्ते से मेरा सम्पर्क नहीं के बराबर रह गया है। कभी कभी कलकत्ते का मामूली दौरा कर—घूम फिर, सिनेमा देखकर पुनः लौट आता। पर कई वर्ष से सो भी नहीं हो सका।

तीन वर्ष हुए शोभना ने फरीदपुर से मुझे एक पत्र लिखा—भइया तुमसे यह छिपा नहीं होगा कि आज छ महीने से मेरी किस्मत फूट गयी है। बच्चे को लेकर कुछ दिन तक ससुराल रही। पर वहाँ भी रह न सकी। तुम्हारे जीजा जी एक डेढ़ सौ रुपये छोड़ गये थे, सो भी—खर्च हो गये। अब दिन कटते नहीं। ममेरे भाई होने पर भी तुम्हें मैं सहोदर समझती रही हूं। बच्चों को जब तक मैं आदमी बनाकर नहीं खड़ा कर देती तब तक मैं भारी रहूंगी, कहीं खड़े होने तक की जगह—नहीं मिलेगी। इधर लड़ाई की वजह सभी चीजों का दाम चौगुना हो गया है। नवीन ने पास हो कर नौकरी की तलाश की—यहाँ कहीं नहीं मिली। माँ चिन्ता से व्याकुल हो रही है। अगर तुम दया कर ऐसी हालत में हर महीने दस रुपया भेज दिया करो तो मुझे सहारा मिल जायेगा। इति—

दिल्ली में मामाजी ने ही नौकरी लगवाई थी इसलिये स्वर्गीय मामा की सहानुभूति और अपनापन शोभना का पत्र पाकर पुनः ताजे हो उठे।

उसी दिन मैंने २५) रु० का मनीआर्डर भेज दिया और लिख दिया कि जब तक तेरा नवीन नौकरी से वंचित रहेगा तब तक मैं १५) रु० हर महीने भेजा करूंगा।

तभी से शोभना, मामीजी, नवीन,—इन सबों से मेरी घनिष्ठता बढ़ गयी थी। और लगातार तीन वर्षों से मैं हर अवसर पर विशेष रूप से रूपये भेजता रहा हूं।

इस बीच युद्ध जनित स्थिति के कारण बंगाल की अवस्था कैसी हो गयी है अथवा शोभना अपनी गृहस्थी कैसे चलाती है इसको कोई खोज खबर मैंने न ली, जरूरत भी न पड़ी। बीचमें जब बमके भयसे बहुतसे लोग कलकत्तेसे इधर उधर भागने लगे थे, तभी शोभना के पत्र से यह जान पाया था कि फरीदपुर में चीजों की महँगाई खूब बढ़ गयी है। बहुत आदमी आये हैं—इत्यादि। पर रुपया मैं नियमित रूपसे भेजता रहा, प्राप्ति-स्वीकार और चिट्ठी पत्री भी मुझे ठीक समय पर मिलते रहे। कुछ भी हो एक तरह से शोभना का दिन कटते ही जा रहे हैं।

लेकिन लगभग छ महीने पहले, मेरा भेजा हुआ रूपया दिल्ली वापस आ गया। यह पता चला कि फरीदपुर के ठिकाने पर मामीजी वगैरह अब वहाँ नहीं हैं। वे कहाँ गयीं? कहाँ हैं? इसका कुछ भी पता न चला। पत्र लिखा उसका भी कोई उत्तर न आया। कुछ दिनों बाद फिर मनीआर्डर से रुपये फरीदपुर के पते से भेजे वह भी ठीक समय पर वापस आ गये। कुछ समझ में न आने पर चुपचाप बैठ रहा। सोच लिया रूपयों को जरूरत पड़ने पर वे स्वयं लिखेगीं, मेरा पता तो उन्हें मालूम ही है।

पर अब तीन वर्ष बाद अचानक कलकत्ते जाने का मौका उस दिन मुझे

मिला। मेरे डिपार्ट के बड़े साहब जरूरी काम से कलकत्ते जा रहे थे। मुझे भी साथ जाना पड़ेगा। सौभाग्य से यह मौका हाथ लगा। निश्चय किया तीन सप्ताहके भीतर किसी एक शनिवारको फरीदपुर जाऊंगा ? सोमवार को छुट्टी ले लूंगा—दो दिन के भीतर मुलाकात कर लौट आऊंगा। मैं यह जानने को बड़ा उत्सुक हो उठा कि भविष्य में जिनका कोई ठिकाना नहीं वे मेरे पन्द्रह रुपयोंसे क्यों उदासीन हो गये। सुना था कि फरीदपुर टाउन में हैजे का प्रकोप हुआ है, तो क्या वे भी काल के गाल में समा गये, उस परिवार का कोई नहीं बचा ? इसमें क्या संदेह इतनी आशंका थी ही।

साहब के साथ कलकत्ता आया और होटल में ठहरा। देखा यह विराट महानगरी दो भागों में बंट गयी है एक हिस्से में भूखमरों की बस्ती बसी है। दूसरे में लड़ाई को सफल बनाने वालों का संगठन, फलस्वरूप अच्छी स्थिति में जो थे वे लखपति हो गये हैं और जो गरीब गृहस्थ थे वे अपना सब कुछ खो चुके हैं, उनका सब कुछ नष्ट हो चुका है। देश के चारों तरफ से आवाज़ आ रही है—अकाल है, सरकार कहती है—नहीं, यह अकाल नहीं है, खाने पीने की चीजों की कमी है। इन दोनों में कितना अन्तर है। इसकी विवेचना किये बिना मैंने एक सप्ताह बाद अपने को कर्तव्य-श्रोत में बहा दिया।

अचानक स्यालदह के चौराहे पर मामीके लड़के से मुलाकात हो गयी। वह एक थैले में करीब पांच सेर चावल और एक हाथ में सब्जी लेकर जा रहा था, मुझे देखकर ठमक गया। मैंने कहा—'क्यों रे नवीन ?' वह चौंका नहीं। ऐसा जान पड़ा कि अब वह किसी से चौंकता नहीं।

केवल अपनी दोनों निस्तेज आँखें उठा उसने धीमी आवाज में कहा —'कब आये भइया ?'

नवीन की बाँह पकड़ मैंने कहा—'क्या हाल चाल है तुम लोगों का ?'

'हालचाल'—वह रास्ते की ओर देखने लगा। कसाइयोंके हाथ में पड़ी गाय की तरह उसकी दोनों आँखें मानो इस शताब्दी के अपमान के बोझ से बोझिल हो गयी हो। गर्दन फिराकर उसने कहा—'हाल चाल और क्या है।'

जरा हंसकर मैंने पूछा—'तेरा चेहरा कैसा होता जा रहा है, पूरे पचीस का भी नहीं हुआ, और बूढ़ा हो चला ?'

मेरे मुंह की ओर भर निगाह देख नवीन ने कहा —'बंगाल में रहते तो तुम भी ऐसे ही हो जाते, भइया।'

उसके शब्दों में अभिमान था, ईर्षा थी, निराशा थी। मैंने कहा— 'चावल खरीद लाये हो ?'

उसने कहा—'नहीं, कण्ट्रोल दर में आफिस से मिलता है। चार आदमी हैं पर, सप्ताह भर में ६ सेर चावल से ज्यादा नहीं मिलता। अब जाऊंगा, खाना बनेगा। तुम्हारा हाल चाल ठीक ही है, देख हो रहा हूं। मजे में हो। अच्छा मैं चलूं—लड़ाई के बाद अगर जिन्दा रहा तो फिर मुलाकात होगी।'

'शोभना का कुछ पता है ?'—मैंने पूछा।

'नहीं'—क्षणेक चुप रह कर उसने पुनः कहा—'उन लोगों की बातें मैं अपनी जबान से बयान नहीं कर सकता भइया।'

'क्यों रे ? वे कहाँ रहती हैं ?'

'३१३, एफ०, बहूबाजार, जाओ न एक मर्तबा—अच्छा चलें'—वह चला गया-निर्वोध और लदी गाड़ी में जुते बैल की तरह ।

नवीन की आँखें, मुँह और स्वर से जो निरुत्साह की ध्वनि मेरे सामने एक तस्वीर खींच गयी—उससे शोभना से मिलने की इच्छा भी मरने लगी । कलकत्ते के किसी छोटे-मोटे मुहल्ले में वह रहती तो कोई बात नहीं । बहू-बजार में तो, उठाईगिरों के अड्डे कम नहीं । यह बात पहले ही मेरे दिमाग में आयी कि नवीन को अच्छी नौकरी मिल गयी है । आज कल अन्न दुर्लभ है लेकिन नौकरी नहीं । जो हमेशा के बेवकूफ थे वे तो अक़्मन्द हो उठे हैं । युद्ध की स्थिति में जो सौ रुपये तनख्वाह की कल्पना तक नहीं कर सकते थे वे कन्ट्रक्टर, सप्लायर बन बैठे हैं और अकाल की वजह कितने तो चावल के सट्टे से लखपति हो गये हैं । हो सकता है नवीन की तरह लड़के की किस्मत इसी तरह खुल गयी हो । इस लड़ाई में असम्भव कुछ नहीं ।

उनकी खबर लूँ या नहीं इसी घपले में कई दिन कट गये । यकायक आफिस के साहब ने कहा—कल दिल्ली लौटना पड़ेगा ।

मेरा भी मन यहाँ से उचट गया था । होटल के नीचे हजारों मनुष्य की ठठरियों की चीत्कार की ध्वनि—दिन और रात गूँजती रहती है—करुण क्रन्दन, चीत्कार और 'हाय हाय', सपनों में भी यही,—जागते में भी यही दृश्य ! बर्दास्त नहीं होता ! दुर्गन्ध कलकत्ते के कोने कोने में व्याप्त है ! फिर भी यहाँसे जानेके पहले एक बार शोभना का समाचार न लिये बगैर मन मानता नहीं । खासकर जाने के एक दिन पूर्व छुट्टी मिली । अवसर भी मिला ।

बहूबाजार का पता ढूढ़ निकालने में मुझे देर न लगी। सोचा था वे किसी भी अवस्था में ही क्यों न हों अचानक सामने उपस्थित होकर उन्हें मैं चौंका तो दूँगा ही। लेकिन मकान देखकर ही मैं सब कुछ भूल गया। सामने एक गँजी की दूकान, भीतर भूसी की आढ़तें। और भीतर आँगन में पहुँच कर देखा—कुछ लोग सिलाई बुनाई कर रहे हैं। ऊपर के तल्ले पर बहुत आदमियों की भीड़भाड़। वह मेस है यह समझते मुझे देर न लगी। पुनः संदेह की वजह मकान का नम्बर मिलाकर देखा, भूल नहीं की मैंने—नवीन ने ठीक यही नम्बर बतलाया था।

आने जाने वालों से पूछताछ कर जब मैंने एक ऊटपटांग खड़ा कर लिया है तो देखा बारह तेरह की एक लड़की ऊपर कौतुक से सीढ़ियों को पार कर जा रही है। उसे ऊपर से ही तीन चार आदमी इशारे से इधर उधर बुला रहे हैं, मैंने उसे देख कर ही पहचान लिया, वह मामी की बेटी थी। मैंने पुकारा—'मैना !'

मैना ने फिर कर देखा। मैं बोला—'पहचानती हो मुझे ?'

'नहीं'।

'तेरी मां कहां है ?'

'कमरे में'

मैंने कहा—'मुझे अपने साथ ले चल तो। यह तो एक दम गोरख धन्धा है। आ, नीचे आ !'

मैना नीचे आयी। बोली—'कौन हैं आप ?'

'मरी'—कह मैंने उसकी पतली कलाई अपने पंजे में ले ली—'तू

मुझे पहले ले तो चल, तेरी मां के पास जाकर ही कहूँगा—मैं कौन हूँ। मरी, एक दम भूल गयी।'

मुझे देख कर ऊपर के लोग जरा सकपका गये। मैं ठीक समझ नहीं रहा था—मेरे शिकंज में मैना की नरम कलाई पड़ने की वजह वह अधीर हो उठी ऊपर जाते उसे मेरा रोकना, ठीक नहीं हुआ। उसकी ओर एक नजर डाल मैंने आप ही उसकी कलाई छोड़ दी। तब मैना ने कहा—'वह क्या है, हौद के पास की गली में सीधे चले जाओ, सब वहीं हैं।'

इसके बाद वह फिर ऊपर भाग गयी। उसकी आंखों और कपोलों पर जाने क्यों उद्भ्रान्त भाव प्रस्फुटित हो गया था। अभी उस दिन की बच्ची मैना, शरीर पर एक फटी साड़ी, चेहरे पर दरिद्रता की वजह रूखापन और इसीके बीच उसके जीवनसे तरुणाई की ताक झांक। उसके भोलेपन की चपलता से अवाक् रह, एक गहरी साँस छोड़ भीतर की ओर मैं बढ़ गया।

शोभना को आश्चर्य चकित कर देने का उत्साह अब मुझ में नहीं रहा। पतली, टेढ़ी मेढ़ी गली पार कर मैं आंगन में जा पहुंचा—बोला—'मामी!'

'कौन है?'—भीतर से किसी स्त्री की आवाज़ आयी, साथ ही एक स्त्री सामने आकर बोली—'किसे खोजते हैं?'

स्त्री अपरिचिता थी। काली सी, नाक में नकछवि, ओठों पर पान की लाली। कलाई में नीली, कांच की चूड़ियां—इस तरह की औरतों की संख्या बहूबाजार में कम नहीं। दो कदम आगे बढ़कर मैंने कहा—'तुम कौन हो?'

'मैं यहां रहती हूं'

इसी समय एक लड़का बाहर आया। वह हरी है।—'हरी, तू मुझे पहचानता है ? तेरी मां कहां है ?'

वह मुझे पहचान सका कि नही, सो मैं नहीं जान सका लेकिन वह हँस कर बोला—'भीतर आइये, माँ रसोई कर रही है।'

और दो कदम आगे बढ़ मैंने कहा—'और तेरी दीदी ?'

'दीदी, बाहर गयी है, अभी आ जायेगी, आप आईए न ?'

करीबन बारह बज चुके थे। पर इस कमान की गन्दगी अभी तक साफ नही हुई थी। दरिद्रता के साथ असभ्यता और अशिक्षा के संयोग से घर दरवाजे की कैसी दशा बन गयी है सो कहा नही जा सकता , इसके पूर्व कभी भी मैंने नहीं देखा। टूटे महराये से दो कमरे—गोबर और मिट्टी की लेप पर रिमझिम बरसात की वजह एक अजीब तरह की दुर्गन्ध जिससे निकल रही थी—पास ही पनाला बह रहा था तथा कूड़े करकट की ढेर। कमरे के एक कोने में एक झाड़ू, गन्दी-सी टूटीसी मिट्टी की हाँड़ी, कोयलों की ढेर। टट्टी और पेशाबखाने के दरवाजे टूट गये थे जिन पर एक फटा चट टाँग दिया गया था। आबरू की रक्षा का यह प्रयास बुरा नहीं। मामीजी की तरह शुद्ध आरचण की स्त्री कैसे इस नरक कुण्ड में रह रही हैं ? क्यों रह रही हैं ? यह मेरे लिये एक अजीब समस्या हो गयी।

रसोई घर के पास जाने पर मामीजी मिली। सहसा विस्मय से मैं घूरने लगा। वे एक टूटे कलाई के कटोरे में चाय पी रही थी। मुझे देख कर बोलीं—'यह क्या, नलनी ? कब आया ?'

पर मैं क्षण भर को स्तम्भित् हो गया, उनका चाय पीना देख कर।

मामीजी हिन्दू कुल की सदाचारणी विधवा हैं, प्रातः स्नान, पूजा-पाठ, धूप-दीप इन्हीं सभों में उलझी उन्हें इतने बड़े संसार में सदा से देख चुका हूं। कितनी बार पीताम्बर में पूजा में सलग्न देख उन्हें श्रद्धा और भक्ति से प्रणाम कर चुका हूँ। किन्तु तीन वर्ष में उनमें कितना परिवर्तन हो गया? रसोई घर में, टूटे कटोरे में वे चाय पी रही हैं।

मैंने कहा—'मामीजी, प्रणाम। पैर छूने दीजिये।'

पैर बढ़ा उन्होंने कहा—'कलकत्ते में कई महीनों से रह रही हूं, पर तुम्हें खबर नहीं दिया और फिर आज कल कौन किस की खबर रखता है भइया! चारो तरफ हाहाकार मचा है।'

'लेकिन मामीजी! आपलोगों के लिये मैं तो नियमित रूप से रुपया भेजता रहा।'—मैंने थमक कर कहा—'लगभग छ महीने से आपलोगों का कोई पता ही नहीं।'

'पता किसी को भी नहीं दिया है—नलनी!'

मामी की आवाज में जाने कैसी अवहेलना और उदासीनता मुझे मिली। एक दिन मैं उनके स्नेह का एकमात्र पात्र था। पर आज यकायक मेरे यहां आने पर असन्तुष्ट हो उठी हैं—यह उनके बातचीत और व्यवहार से ही स्पष्ट है।

'सुनती हो बहन!'—कहती कहती, वही स्त्री दालानमें आ डटी जो दरवाजे पर मुझे मिली थी—मामीजी ने उसकी ओर देखा। पुनः उसने कहा—'तुम बाजार जाओगी? आज गंगा का जीता हिलसा (मछली) सस्ते में बिक रहा है।'

उसकी लालायित भाव और भाषा के कारण मामीजी का मुंह विवर्ण हो गया। उन्होंने कहा—'विनोदवाला! तुम अभी जाओ।'

इतना उत्साह जनक संम्बाद पाकर भी मामीको उत्सुक न देख विनोद वाला सुस्त हो वहाँ से चली गयी। मामी बोली—'नलनी, तुम्हें जल्दी ता नहीं है ?'

'नहीं तो!'—कह मैं जरा हँसा—'आज मैं यहीं रहूँगा मामीजी!'

'रहो न, भईया! लेकिन...खाने पीने की जरा...बड़ी तकलीफ में हूं' रुक-रुक कर कह मामीजी ने कटोरे में बची चाय एक ही घूंट में घोट गयी। मेरे रहने की बात सुन कर भी वे उत्साहित न हुईं, न आनन्दित ही।

'शोभना कहाँ है ?'—मैंने कहा

'वह अभी आ जायेगी, शायद पड़ोस में कहीं गयी है।'

कुछ असन्तोष से मैंने कहा—'क्या आज कल वह अकेली बाहर आती जाती है ?'

मामी बोली—'नहीं, ऐसी बात नहीं, तब नून-तेल कभी-कभी बाजार से लाने तो जाना ही पड़ता है। विनोदवाळा साथ जाती है।'

मामी ने मेरे प्रश्न का सही उत्तर नहीं दिया। मेरे मन में कुछ ऐसी वैसी बातों ने घर बना लिया। पूछा—'शोभना का बच्चा कहाँ है ? कितना बड़ा हुआ ?'

वह बोली—'उसके बड़े चाचा उसे ले गये। हमारे पास नहीं रहने दिया। उनका बच्चा था, वे ले गये।'

'क्या कहती हो मामो! कहीं बच्चे माँ को छोड़ रह सकते हैं ? शोभना रह सकेगी ?'

'क्यों नहीं, जब एक रुपये में दो सेर दूध भी मुहाल है। तब बच्चे को कौन खिलायेगा ? अपनी ही हाँड़ी कितने दिनों तक नहीं चढ़ती नलनी !' मामी के अन्तः करण का गुब्बार निस्वाँस में परिवर्तित हुआ—'बीमार पड़ने पर दवा-दारू नहीं, साड़ी जोड़े की कीमत बारह-चौदह रुपये। चावल मिलता ही नहीं। कितने दिनों तक सहती रहती—भीख नहीं माँगी हो सो बात भी नहीं। रात को इज्जत खोकर हाथ पसारनी पड़ी इस से भी नहीं बाज आई फिर भी तो किसी ने हमारी खबर तक न ली ?'

बहुत कुछ घोट कर मैंने कहा—'मामीजी ! उसकी भी आज यही दशा है। उसी से तो आप का पता मिला।'

मामी अब तक बैठी रही, इसी से निगाह से चूकता रहा, पर उसके उठ कर खड़े होते ही—जगह-जगह फटी साड़ी की ओर देख कर आँखें फेरनी पड़ी। उन्होंने कहा—'हमारा पता और किसीको मत बताना भइया !'

मैना भागी भागी आयी, दरवाजे पर खड़ी हो गयी। उसकी चंचलता, ओठों पर बिखरी मुस्कान से ताक झाँक कर रही थी। वह बोली—'माँ माँ, सुनती हो ? यह लो आठ आना…हरीश बाबू ने दिया है—'

मैना के सर के केश बिखरे-से थे। फटी साड़ी अस्त-व्यस्त-सी थी। मुखाकृति पर रक्त की लाली दौड़ रही थी और स्वर से उत्तेजना का आभास मिल रहा था। अधीर होकर पुनः वह बोली—'जानती हो माँ ! आज रात को जाऊँ तो योगिन मास्टर भी आठ आना दे देगा, उसने कहा है।'

मामी आवाक हो मुझे घूरने लगी। फिर गरजकर मैना से बोली—'निकल, निकल जा हरामजादी यहाँ से। झाड़ू से झमाड़ू तुझे।'

मैना एक दुत्कार में सुस्त पड़ गयी। माँ के सामने से वह हट गयी केवल अनुरोध के स्वर में बोली—'तुम्हीं ने ही तो कहा था।'

हरो दूर से ही चिल्ला पड़ा—'फिर झूठ कहती है मैना, अभी तुझे जाने को कहा था रे ! माँ ने तो रात को जाना, ऐसा कहा था न ?'

मामी अस्तव्यस्त होकर बोली—'नलनी, तुम असमय आ गये हो, घर में जाकर बैठो।'

मैं धीरे धीरे घर में जाकर चारपाई पर बिछे मैले बिस्तर पर बैठ गया। मेरे अन्दर से--जाने कैसी उकाई सी-कुछ बाहर आ जाना चाह रही थी। यह क्या हो रहा है ? इसे मैं कभी भी नहीं समझ सकूँगा। मैं इसी परिवारमें एक हूं, इन्हीं में एक हूं, इसी परिवारमें मेरा जन्म हुआ है पर आज ऐसा लग रहा है जैसे मैं एक अपरिचित और कभी स्वागत के काबिल नहीं हू। जो मेरी मामी है, मेरी बहन है—जिसे सदा अपना समझता आ रहा हूं—यह वे नहीं हैं, यह हैं बहूबज़ार के विनोदवाली की सहवासी—ये हैं पूर्व सभ्रान्त परिवार की प्रेत आत्माएँ !!

ध्यान में नहीं रहा कि खिड़की खुली है। बहूबाजार के एक अश का दृश्य यहाँ से स्पष्ट दीखता है। वहाँ आने जाने वालों की बड़ी भीड़, भाड़ है—ट्रक, बस, मोटर, बैलगाड़ी और मिलिटरी बसों की भयकर आवाज के साथ साथ सुनाई पड़ रही है भूखमरो की करुण चीत्कार—मृत्यु की आशा में बच्चे कीड़े की तरह रेंग रहे हैं, खिचड़ी की बाल्टी घेर कर जानवरों की तरह भूखमरे बैठे हैं, कुछ पनारे में पड़े छटपटा रहे हैं।

खिड़की बन्द कर उधर से आँखें फेरने के उपक्रममें मैं असफल हो गाया क्यों कि उधर से ही हरी और मैना के रोने की आवाज आ रही थी मामीजी

लकाठी से उन्हें मार रही थीं। मेरी इच्छा हुई कि कह दूं कि—उनका कोई कसूर नहीं—बे-कसूरों को कसूर बार बनाने के लिये जो षड़यन्त्र रचा गया है, मशीनें बनाई गयीं हैं, वे तो उसी के पैदावर और अनुसार हैं—उनका क्या कसूर। लेकिन बाहर जाने के पहले ही सुनाई पड़ी कई आदमियों की स्मित हँसी—हँसी क्रमशः नजदीक होती आयी।

कमरे के पास आते ही देखा बिनोदवाला के साथ शोभना को। मेरे पुकारते ही जैसे वह अकचका गयी। दरवाजे के पास वह पहुंच विस्मय से बोली—'अरे, तुम भइया !! तुम्हें पता कहाँ मिला ?'

मैं बोला—'ढूढ़ता ढूढ़ता आ पहुंचा। कैसी हो ?'

अबतक शोभना अपने आपको घूर रही थी। आश्चर्य से बोली—'मुझे आशा नहीं थी कि तुम यहाँ पहुंच जाओगे।'

कुछ क्षण तक चुप्पी रही। पुनः मैंने ही कहा—'शोभना! कितने दिनों बाद तुम लोगों को देख रहा हूं। कितने देशों का सफर किया। दिल्ली में कैसे रहता था—यही सब कहने सुनने आया हूं मैं। बच्चे को तूने भेज दिया, रह सकेगी ?'

'रह नहीं सकुंगी तो चलेगा कैसे ?'

इधर उधर ताक झांक कर मैंने कहा—'यह मकान अच्छा नहीं है, क्यों यहाँ रहती है शोभा !'

'यहां भाड़ा नहीं देना पड़ता।'

सविस्मय से मैं बोला—'भाड़ा नहीं देना पड़ता, इतना दयालु कौन है ?'

शोभना बोली—'जिसका मकान है वे हमारी हालत पर तरस खा कर भाड़ा नहीं लेते उनका कोई है नहीं, अकेले रहते थे इसी से—'

ऐसा लगा जैसे बिनोदवाला ओट से हाथ के इशारे से शोभना को पुकार रही है और मुँह फिरा कर शोभना चली गयी। पाँच मिनट के बाद जब वह पुनः सामने आकर खड़ी हुई, तब उसकी बारीक फटी साड़ी की जगह लाल किनारे की एक साड़ी उसके तन से लिपटी थी।

'शोभना, तुमने जब पता बदला, तब मुझे पत्र क्यों नहीं लिखा ?'

'भइया, मैंने जान बूझकर ऐसा नहीं किया।'

'पर महीने के रुपये लेना क्यों बन्द कर दिया रे ?'

'बच्चे के लिये ही भीख मांगती थी, पर वह तो मेरा बच्चा नहीं—इसी से।'

प्रश्न किया—'किन्तु तुम लोगों का और सब चलता कैसे है ?'

शोभना ने कहा—'तुम आज आए हो, आज ही चले जाओगे, फिर यह क्यों जानना चाहते हो भइया ?'

मैं चुप लगा गया। जब यह जानने का अधिकारी मैं नहीं, तब मुझे जानने की जरूरत भी नहीं। पूछा—'नवीन कहां है ?'

'वह चटकल में काम करता है, २५) रू० मिलता है उसे। हफ्ते-हफ्ते चावल, दाल भी लाता है। आज कल बहुत बिगड़ गया है दारू पीता है, आता कभी नहीं।'

'क्या, नवीन इतना अच्छा लड़का ऐसा हो गया ? हरी की पढ़ाई भी तो बन्द है, वह क्या करता है ?'

शोभना नत होकर बोली—'चौराहे पर चाय की जो दूकान है वहीं काम करता था। पर उस दिन कुछ चुरा कर खा रहा था—उसकी नौकरी छूट गयी।'

स्वभावतह ही इस बार प्रश्न शोभना के लिये उठा। लेकिन मैं पूछ न सका। जरा दूसरी तरह से बोला—'शोभा मुझे यह अच्छा नहीं जंचता, मैना, जो कुछ भी हो अब सयानी हो चली है उसे जब तब बाहर जाने देना ठीक नहीं। मकान में तरह तरह के आदमी हैं—समझती तो है ही।'

तभी दरवाजे पर अधमैले कपड़ों में एक आदमी हाथ में दोना लिये आकर खड़ा हो गया। चदैला सर, बड़ी बड़ी दाढ़ी मूंछें, उम्र उसकी अधिक नहीं, बोला—'बिनोदवाला, कहां गयी? एक लोटा पानी मेरे घर में ले आ तो। हाय रे किस्मत, दोना हाथ में लेकर चलना मुश्किल है। कुत्तों की तरह आदमी की टोली आ घेरती है। झपट लेने को ही बढ़ती है। सड़े आम की गुठली पनाले से उठा उठा कर आदमियों को चूसते देख कर आ रहा हूं। पानी का लोटा लाई, दो। इस दुर्भिक्ष में भूखों की स्थिति देखी, समझी बिनोदनी! आगे झोली लेकर भीख मांगना-मुट्ठी भर चावल मिल जाये, फिर जस्ते के कटोरे हाथ में लेकर गली गली चक्कर लगाना शायद कहीं—माड़ मिल जाये। इसके बाद रोना, पीटना, चीत्कार, हाहाकार—कहीं कुछ नहीं मिलता। अरे मिले कहां से साधारण घरों में माड़ पी पीकर जो रह रहे हैं। चलो कौचड़ी चबाकर ही सो जाऊं। कहता-कहता वह आदमी मकान के भीतर की ओर चला गया।

मेरी जिज्ञासु दृष्टि की ओर देख कर शोभना ने कहा—'यह एक मास्टर हैं, उस आंगन में रहते हैं।'

'अकेला या सपरिवार?'

'जब नौकरी थी तब परिवार था, लेकिन अब वह अकेला है। सब से पहिले बड़ी लड़की कहीं चली गयी, पत्नी बेटी के लिये अफीम चाट कर मर

गयी। दो लड़का है—मो मामा के घर। भइया, बताओ तो ऐसे कितने दिनोंतक चलेगा? यह लड़ाई खतम नहीं होगी?'

शोभा के इन प्रश्नों का उत्तर देना दूर की बात है, सान्त्वना देने के लिये भी तो मेरे पास कुछ नहीं। केवल मैं उसे मूक घूरता रहा—काली परिधि में उसकी दो आंखें, सूखे केश, लकड़ी की तरह दो पतले पतले हाथ, रक्त और स्वास्थहीन उसका पीला सा मुखमण्डल। मानो युद्ध की अमिट छाप उसके सर्वाङ्ग शरीर पर अंकित हो, मानो दुर्भिक्ष का प्रेत उसी के सर चढ़ कर हँस रहा हो—अपमानजनक हास्य! उसके शब्दों और कण्ठ स्वर में जैसे आत्म विद्रोह की अग्नि शिखा भड़कना ही चाह रही हो। उस दिन की रूपवती, और चरित्रवती शोभना—मेरी छोटी बहन—आज मानो अग्नि की तेज लपट की तरह लप-लपाना चाहती हो। आज वह मेरी सान्त्वना और उपदेश सुनने के लिये प्रस्तुत नहीं। फिर भी मैं चुप नहीं रह सका। मैंने कहा—'शोभा, इसे तो तू मानेगी ही कि यह हमारी परीक्षा के दिन हैं। इस विनाश और ध्वंस के चक्र से हमें बच कर ही रहना होगा जैसे हो, अपना सब कुछ—सतित्व, मान मर्यादा—बचा कर जीना ही होगा शोभा!'

'मान, मर्यादा?' शोभना जैसे आर्तनाद कर उठी—'कैसी मान-मर्यादा, भइया? मन की आग शान्त करती रही लेकिन पेट की आग में राख हो रही हूं! कौन कहता है प्राण से बढ़ कर मान-मर्यादा है? वह झूठा है, हमारा हृदय जलता है, इसीसे मुंह भी खुल गया है! भइया, तुम क्या कह सकते हो—यदि तिल तिल न खाकर मर जाऊं, यदि पेट की ज्वाला से भगवान की ओर मुंह उठा कर आत्महत्या करूँ, यदि तुम्हारे घरों से मैं

बहनों की लाशें निकले, तब क्या तुम्हारी मान-मर्यादा बचेगी ?—जिन्होंने हमें जीने नहीं दिया, हमारे खून से अपनी प्यास बुझाई, उनका क्या मान-सम्मान संसार के भले समाज में कभी बढ़ा ? जाओ, भइया बंगाल के गृहस्थों के घर झाँक आओ, कितनी माताओं की बत्तीस नाड़ियां जल कर राख हो गयी हैं मुट्ठी भर अन्न के लिये। एक साड़ी के लिये कितनी बहनें, मौसी, नानी, दादी, भाभी ओट में बैठी आंसुओं से मुंह धो रही हैं। अंधेरे में गमछा और बिछावन का चादर लपेट कर कितनी स्त्रियाँ दिन काट रही हैं—जानते हो ? नून चाट-चाट कर कितनी, सुकुमार लड़कियां केवल सांस भर ले रही हैं—सुना ?—मान-मर्यादा ! मान-मर्यादा का कुछ मूल्य अब है भइया ?'

लज्जावती, इसी शोभना को कब से देखता आ रहा हूं। उसकी यह उत्तेजना मेरे लिये एक आश्चर्य हो गया है। मैंने कहा—'कण्ट्रोल की दूकानों में—कम दामों में—चावल, कपड़े सभी तो मिलते हैं।'

शोभना मेरे मुंह की ओर देखती रही—देखती रही कि उसके मुंह से सड़े भात की फेंद की तरह—गले के भीतर से एक प्रकार की उल्टी बल से बाहर निकल आयी। मानो कोमल मुंह व्यंगाट्टहास की प्रेरणा से फट गया हो। शोभना हहा कर हँसने लगी, विभत्स, उन्मत्त, निर्लज्ज और अपमानजनक हँसी।

मेरा निर्वोध कौतूहल निस्तब्ध हो गया।

मामी से मार खा कर मैना और हरी खिड़की के पास आकर फूट फूट कर रो रहे थे। यकायक उसकी ओर देख कर शोभना फट पड़ी—'काहे रो रही है, जरा सुनूँ ? दूर हो जा सामने से कुत्ती !'

विनोदवाला अब तक जाने कहां खड़ी थी, पास आकर बोली—'बहन, मौसीने उसे मारा है। पड़ोस के हरीस बाबू से मैना पैसा ले आयी थी न, हरीआ इसपर क्या कह गया था इसीसे—'

शोभना की आंखें जल उठीं, उठ खड़ी हुई गरज कर बोली—'माँ! क्यों तुमने मारा, जरा सुनूँ ?'

मामी ने नल के पास से ही कहा —'नहीं, मारुँगी नहीं? कलंक की बातों को लेकर दोनों लड़ झगड़ रहे थे, इसीसे मारा, ठीक किया।'

'लेकिन उनको मार कर कलंक की बातों को तुम किस आँचल में छिपाओगी ?'

मामी भी गरज पड़ी—'बड़ी-बड़ी बातें करनी सीख गयी है तूं शोभा? इतनी जलन तुझे क्यों है मुझसे ? हमेशा तेरी आँखें मैं क्यों बर्दाश्त करूंगी ? किस्मत तो तू ही ने फुड़वाया, आवरू बिकी ? अपने बाल-बच्चों को मैं मारूंगी, गला दाबदूंगी, जी में जो आयेगा वही करूंगी, तू बोलने वाली कौन होती है ?'

'बाल-बच्चे से ही तो पेट की ज्वाला मिटा रही हो, लाज नहीं तुम्हें ? घर का खर्च मैना से तो चलवा रही हो, इस पर यह ताव!'

'नहीं, क्या मैं अपना मुँह मराऊँ शोभा ? मामीजी बोलती बोलती शोभा के नजदीक आ गयी—'नलनी है, चुपरही-पूछती हूँ फरीदपुर में बैठी बैठी बिनोदवाला का पता किसने ढूंढ़ा ? गाड़ी भाड़ा किससे तूने लिया ?'

'मैं भी पूछती हूँ।'—शोभा भी दो कदम आगे बढ़ गयी,—'मास्टर को कौन लाई ? हरीश, योगेन के पास मैना को किसने भेजा ? मुझे सेठ के घर में कौन पहुँचा आई ? जवाब दो ? होटल से पांवरोटी और हड्डियों का टुकड़ा तुमने उठालाने को नहीं कहा ?'

'मुँह सम्हाल कर बोल, शोभा ?'

लड़ाई मिटाने के लिये इसी समय बिनोदवाला बीच में कूद पड़ी। माँ और बेटी का यह अधःपतन देखकर मैं नहीं रह सका। वहां से उठ वह नजदीक आ खड़ा हुआ। बोला—'मामी जाओ तुम स्नान करो। शोभा चुप रह ऐसी स्थितिके लिये किसको दोष दिया जाये ? तुम्हें, मामी को, मैना, हरी या विनोदवाला, मास्टर, हरीश किसीका भी दोष नहीं। पर जो दोषी है वह हमलोगो से भिन्न और कोई है शोभा ! खैर-मैं चल रहा हूँ, फिर कभी आऊँगा। कुछ ख्याल न करना'।

बिनोदवाला ने बीच में ही कहा—'खूब हुआ, जा खा पी कर तैयार होले जल्दी, 'तू तू मैं मैं' से तो पेट नहीं भरेगा। पेट जिससे भरे वही कर। मुझे क्या पता था कि तुम लोग रईस घरकी हो, नहीं तो बीच में पड़ती ही नहीं।'

अपमानित आंखों से बिनोदवाला को घूरता मैं वहां से निकल आया—पाताल की सुरंग से सांस रोकता हुआ मैं आ निकला राजपथ पर, नीले आकाश को छाया में—जहाँ भूखमरों की चीत्कार होने पर भी दयाहीनता, उदासीनता को आगे कर इन्हें ठुकरा आगे कदम रखा जा सकताहै। लेकिन जहांपर दरिद्रताकी चिता लहकती हो, जहां दुर्भिक्ष-पीड़ित निवासियों की मर्मान्तिक अन्तर्दाह में जल कर भस्म हो रही हो आबरू, जहां पर केवल निरुपाय, दुर्नीति की गुफा में बैठे उत्पीड़ित मानव अग्राह्य अन्न को ग्रासा रहे हों—ओह !

पर वे कौन हैं ? वही फरीदपुर के छोटे से मठकोठे का परिवार जो फूलों की खुशबू और साक सब्जी के घेरे में भी आचारशील, मातृत्व की पुजा-

रणी मामो ! कोमल प्रभाती में खिले पुष्प की भांति बहन शोभना, चम्पा की की कली की तरह निष्पाप, निष्कलंक, हरी, नवीन और मैना !! क्यों यह सुखी परिवार क्रमशः इस तरह समाज में भ्रष्ट हुआ ? क्यों उनके मरने के पहले उनका मनुषत्व मर गया ? कौन बे-दर्दी, निकृष्ट, पातकी इस पतन का उत्तरदायी है ? किसके चौड़े ललाट पर इस कलंक का टीका लगाया जाये ?

[२]

अब कई महीने के उन्हीं रूपयों को मैं खर्च कर सकता हूं जो शोभा को भेजा करता था। अस्तु दिल्ली जाने के पूर्व उन्हें ऐसी अवस्था में छोड़ कर मैं नहीं जाना चाहता। दोपहर को बाजारों और दूकानों की चक्कर लगा कुछ अन्न संग्रह कर पाया। दस गुना अधिक दामों पर सामान मिल सका।

विगत श्रावण का कृष्ण पक्ष, बूंदे पड़ रही हैं। एक गाड़ी में सब कुछ बोझ कर फिर मैं चल पड़ा शोमना के मकान की ओर। इतना करने पर भी किसी तरह का गौरव बोध नहीं कर रहा हूं मैं, बल्कि एक तरह का अपने आपसे घृणा ही महसूस कर रहा हूं। खाने का प्रश्न आज जीवन में सब प्रश्नों से अधिक महत्व पूर्ण हो उठा है शायद इसी से घृणा हो रही है। यह सारी चीजें कभी ऊँची अट्टालिका के निचले हिस्सों में उपेक्षित सी पड़ी रहती थीं। शायद इसी से आज वह उस उपेक्षा का बदला लेने के लिये, जातिच्युत की जलन मानव मात्र से मिटा रही है।

फिर भी पथों का अतिक्रम कर, उपस्थित हुआ बहूबाजार के एक मकान के दरवाजे पर बहुत परिश्रम और चालाकी से ले जाकर मैंने

रख दिया उसे अस्त व्यस्त मामी के कमरे में छिपा कर। तीन महीने काट देने लायक चीजें हैं।

गली की ओर जाने कहां एक केरासिन की बत्ती टिमटिमा रही थी उसी का क्षीण प्रकाश आकर पड़ रहा था मेरे ऊपर। नल के पास से किसी स्त्री के साथ साथ स्कूल मास्टर की आवाज सुन पड़ी। नीचे का मंजिल निस्तब्ध और मृत्यु पुरी की तरह शान्त था।

मैं दो चार कदम आगे बढ़ गया। पुकारा मैना हरी कोई उत्तर नहीं। जिस कमरे में दोपहर को मैं बैठा था वह भीतर से बन्द था। समझ गया थक कर मामीजी वगैरह सो गयी हैं।' पुनः मैंने पुकारा-मैना मैना !!

पूर्व आवाज अभी तक आ रही थी ।

भीतर से शोभना ने कहा—'दिन रात इतना मैना मैना क्यों करते रहते हो तुम लोग ? मैना पड़ोस के मकान में गयी है, आज उसे नहीं पाओगे, जा, मुँह जरा, चमार ?'

मैंने कहा—'शोभा मैं हूँ, और कोई नहीं—नलनी—दरवाजा खोल तो ?'

'भइया ?—शोभाना ने तत्काल दरवाजा खोल दिया और वह मेरे पैरों पर गिर गयी। रोती, काँपती आवाज में वह कहने लगी—'भइया पेट की जलन से हम नरक-कुण्ड में चले आये हैं, मैं गिर गयी हूँ तुम मुझे क्षमा करो, तुम्हारी आवाज नहीं पहचान सकी।'

शोभना का हाथ पकड़ मैंने उसे उठाते हुए कहा—'रो मत, चुप रह, तू तो अकेली नहीं है बहन। लाखों परिवार इसी तरह मृत्यु की प्रतीक्षा में बैठे हैं, नरक-कुण्ड में प्रवेश कर रहे हैं। पर हताश होने से काम नहीं

चलेगा , इसी तरह इस अवस्था को पार करना होगा शोभा !—मैंने एक निस्वास के बाद पुनः कहना शुरू किया—'सुन, कल मैं दिल्ली चला जाऊँगा, तुम लोगों के लिये कुछ सामान खरीद लाया हूं, उसे सम्हाल कर रख।'

'सामान लाये हो ?' कमजोर शोभना उत्तेजित हो उठी। जैसे क्षुधा तृप्ति की कल्पना में विकृत, उग्र और असह्य उल्लास उसके कण्ठ स्वर में काँपने लगा। अवरुद्ध स्वर में ही वह बोली—'तुम ने बचा लिया भइया। तुम्हारी देन हम कभी भी नहीं सोध कर सकेंगे।'

मेरे हृदय पर अपना सर लुढ़का, मेरी चिर दिन की आदर भी बहन फूट फूट कर रोने लगी। मैंने कहा—'साथ ही एक पैकेट है उसे पहले उठा कर रख।'

शोभना हम से अलग हो, केरासिन की बत्ती हाथ में ले जहाँ चावल वगैर पड़ा था जा पहुँची और खड़ी खड़ी एक बार सभी पर आँखें फेर गयी। इसके बाद असीम तृप्ति के साथ कपड़े का पैकेट उठा चारपाई के नीचे रख, आकर बोली—'भइया, ख्याल है, हम लोगों के लिये क्या कभी कोरा कपड़ा पहन कर लोगों के सामने आना लज्जा की बात थी ? क्या दूकान से चावल खरीद कर भी छिपा कर खाने में शर्म कभी हुई थी ? ख्याल है भइया।

मैंने हँस कर कहा—'सब ख्याल है !'

शोभना करुण कण्ठ से बोली—'तुम कह सकते हो, भइया। यह अकाल कब शेष होगा। सभी कहते हैं धान कटने पर और कोई दुख में नहीं रहेगा।'

उसकी यह बातें सुनकर मैं चुप रहा, कारण, सरकारी दफ्तर में काम करने पर भी मुझे भीतरी खबर कुछ मालूम न थी। शोभना ने पुनः कहा—फरीदपुर

का खेत, तुम्हें याद है ? सोचो तो उस खेत में सोने का दाना कैसा चमकता था, कैसे हवा की लहरों में सौ सौ बलखाती थी उसकी डाँटी, जैसे नदी की लहरों का तरंग। खेतों में किसानों का गीत—धान काट रहे हैं—उसी सोने के दाने को वे घर घर में बाँटते थे, याद है ?'

शोभना की दोनो आँखें हो सकता है, सोने के बंङ्गालमें, खेतो में चक्कर लगाई हो, किन्तु मैं किरासन की लौमें इस नरक कुण्ड के सिवा और कुछ नहीं देख सका—केवल एक निस्वास के बाद बोला—'क्यों नहीं, याद है।'

'लेकिन यह क्या सुन रही हूँ मैना ?' शोभना फिर मेरे मुँह की ओर घूर कर देखने लगी। भय से आँखें उठा कर वह बोली—'कागज दीखा कर फिर वे लोग ले जायेगें हमारे हृदय के रक्त से सींचे दानों को ? नवान्न के बाद फिर क्या हमारे घरों में रोने की चीत्कार गूंजा करेगी ? कह सकते हो तुम ?'

उत्तर में कुछ कहने ही जा रहा था कि सहसा—बाहर किसी के पैर की आहट पा शोभना सचकित, दर्द भरी आँखों से अन्धेरे में देखने लगी। क्षणेक बाद काँपते कण्ठ से बोली—'भइया अब तुम जाओ, बहुत रात हो गयी है, जरूर, मुझे ध्यान ही नहीं रहा, हाँ नौ बजा है। जाओ, चले जाओ, अब तुम जाओ भइया।'

'पहले इसे उठा कर ठीक रख ?'

'रखूंगी—ठीक से उसे रखूंगी, एक एक दाना गीन गूँथ कर रखूंगी, लेकिन अब तुम चले जाओ—ला मैं बत्ती दीखाती हूं—देर मत करो बड़े अच्छे हो भइया।'

जब शोभना मुझे ठेल धकेल कर बाहर करने में लगी थी तब एक आदमी चावल के बस्ते से टकरा कर कमरे में आ घुसा। बिलकुल शरीर पर आकर

उसने कहा—'ओ, कोई नया उल्लू है। चावल, दाल अरे बिलकुल नगद मामला।'

उसके शरीर पर एक खाकी कमीज जिससे ऐसी दुर्गन्ध निकल रही थी मानो वह शराब की भट्टी से निकल कर आ रहा हो। मैंने कहा—'तुम कौन हो?'

'मैं, चटकल का भूत, साहब' इतना कह चुकने पर उसने लपक कर शोभना की कलाई अपनी मुट्ठी में कर लिया और कमरे के भीतर टानते घसीटते ले गया—'यहाँ आओ, कुछ कहना है।'

'हाथ छोड़ो, मैं नहीं सुनूँगी।' शोभना ने एक झटके में अपनी कलाई छुड़ाली।

'वाह'—उस आदमी ने भ्रूकुंचित कर कहा—'मैंने कल तुम्हें एक रुपया नहीं दिया?'

शोभना रुकती आवाज में दाँतो के तले ही बोली—'निकल जाओ यहाँ से, चले जाओ।'

'हूं—चला जाऊँगा, इसी के लिये तो उतनी दूर से आ रहा हूं? खूब कहती है पगली।'

'जाओ, निकल जाओ'—चिल्ला कर शोभना ने कहा—'जाओ, दूर हो जा यहाँ से—'

वह शायद चारपाई पर बैठना चाह रहा था, हंस कर बोला—'आज फिर पगली हो गयी है?'

शोभना आर्तनाद कर उठी—'भइया, खड़े खड़े सब तुम देख रहे हो? इस अपमान का क्या कोई प्रतिकार नहीं? ठहरो आज खून करूँगी—कहाँ

है कटारी…' वह कहती हुई दौड़ पड़ी रसोई घर की ओर इस बार वह उठ कर बाहर आ गया। बोला—'अरे इसने मुझे कई बार खून करने की धमकी दी है। सच यह बुरी नहीं लेकिन पगली है। तब भी क्या जानते हैं हम हैं एसेनसियल—सर्विसर, लोक-युद्ध के कारखाना में लोहे लक्कड़ से ही खेलता रहता हूँ, औरतों की धमकी को मैं कुछ नहीं समझता यह सब जानते हैं। वह आई० ई० मार्का के आदमी। वह तरह तरह की गुण्डई कर सकते हैं।'

उन्मादनी की तरह हाथ में कटारी लिये शोभना वहाँ उपस्थित हो गयी मामी दौड़ी दौड़ी आयी, हरी भी घबड़ाया सा वहाँ पहुंच गया। उसने स्थिर स्वर में कहा—'रहने दे, रहने दे, खून करने की जरूरत नहीं, मैं जा रहा हूं ले जा रहा हूं।'

बिनोदवाला और मामीजी ने दौड़ कर शोभना को पकड़ लिया वह आदमी पुनः लौट कर बोला—'ठीक है बिनोदनी के घर में ही रात काट दूंगा। लेकिन आधी रात में मुझे बुला लेना नहीं तो मैं सो नहीं सकूंगा। ठीक है कल अढ़ाई सेर चावल ले आना कारखाना से। चल बिनोदनी।' कहता कहता वह विनोदनी का हाथ पकड़ टानता हुआ स्कूल मास्टर के घरमें जा घुसा।

शोभना मेरे पैरों पर गिर कर रोने लगी, बोली—'कब, कब भइया, यह राक्षसी लड़ाई खतम होगी? कब इस अपमान का अन्त होगा? मौत के और कितने दिन बाकी हैं?

धीरे धीरे मैंने पैर छुड़ा लिया। शोभना के मुंह से रक्त की धार बह चली। बोली—'तुम जहाँ जा रहे हो, वहाँ अगर कोई आदमी हो तो

कहना—यह युद्ध हमारी वजह से नहीं दुर्भिक्ष मेरे कारण नहीं, हमने पाप नहीं किया, मरना नहीं चाहते ।

शोभना रोये, सभी रोये । मैं घोर अन्धकार में कदम चाप कर लौट पड़ा । केवल अन्धकार, अनन्त अन्धकार । सिर्फ लगा अंगारी की अग्नि जल जल कर जैसे निस्तेज हो जाती है वैसे ही महानगरी में भूखमरे चारो तरफ आँखे बन्द किये—फुट-पाथ, पनाले, मल पर पड़े मृत्यु की पद ध्वनि की झंकार में लीन हैं ।

काल नाग

श्री अचिंत्य कुमार सेनगुप्त

भवतोष ने निश्चय किया—आत्महत्या। आत्महत्या के सिवा और कोई चारा नहीं। अगर अन्तिम पहर में चाँद नहीं उदित होता तो रात बगैर पानी के मीन की तरह छटपटाते ही कटती। आकाश पर चाँद देख कर उसकी आशा बँधी। अब शायद आकाश गाज बन कर फट पड़ेगा। उसका सब कुछ देखते ही देखते अंगार में परिवर्तित हो जायेगा। सब कुछ से अर्थ है—उसकी लज्जा, उसकी दीनता, उसकी साहस हीनता।

पर आज का चाँद आतंक और व्याकुलता लिये नहीं है बल्कि अपनी मधुरिम थपकियों से नींद की गोद में लिटाने के लिये सचेष्ट है। क्या हर्ज है अगर आज वह सो जाये तो! कल वह आत्महत्या करेगा चाँद से दरखास्त न भी करे तो कोई हर्ज नहीं।

भवतोष सचमुच सो गया। कुछ क्षण के लिये ही वह भूल सका कि कल उसे आत्महत्या करनी है? भूल गया कि तीन दीन से वह भर पेट भोजन नहीं कर पा रहा है, सात दिनों से उसकी आंखों में नींद नहीं, महीने से उसके पास पहनने के लिये कपड़े नहीं। वह भूल गया बगैर जूते के ही वह बाहर भीतर आ जा रहा है। एक दिन पहले लिखने की छोटी मेज

कोयले के अभाव में उसे जलानी पड़ी है। भूल गया वह—अपनी असहाय स्त्री, बच्चों को और यह भी भूल गया कि वह एक स्कूल मास्टर है।

दृढ़ निश्चय की व्यग्रता की वजह उसकी नींद बड़े तड़के उचट गयी। दिन के प्रारम्भ के क्रम में उसे कुछ नवीनता दिखी। नवीनता झलकने लगी उसे अपने घर में बहुत देर से सुधा की कर्कश कण्ठस्वर सुन न पड़ने पर और उसकी फर्मायिश की शिकायत अब तक न होने के कारण। यह एक नयी बात है ? यह क्या, चूल्हे की धूएं की गुम्बज है।

भवतोष चारपाई से उतर पड़ा। नीचे जमीन पर लुढ़के हैं केवल बच्चे, सुधा वहां नहीं है। जहां नींद का अर्थ है आँखें बन्द किये पड़े रहना वहां इतनी तड़के उठ बैठने का क्या अर्थ ? और अगर उठ भी गयी तो अपने को जानने क्यों नहीं देती ?

छत पर नहीं है—तब भवतोष एक तल्ले पर उतर ढूढ़ने लगा। कहीं भी सुधा का पती नहीं। चौके से आँगन—कितनी-सी जगह ही है—वह बार बार घुर-फिर कर देखने लगा—सुधा कहीं नहीं। अचानक उसकी आंखें सदर दरवाजे पर जा टिकीं—दरवाजे की सिटकिनी खुली थी।

भवतोष के हृदय पर एक आघात पहुंचा—तो क्या सुधा घर में नहीं है ? दरवाजा खोल गली के अन्तिम छोर से वह लौट आया, सिवा मेहतरानी के और कोई स्त्री नहीं दिखी।

भवतोष क्या पागल है या विश्वास उसने खो दिया जो अपनी पत्नी को दुश्चरित्र समझ बैठा ? जरूर कहीं मकान में ही होगी। हो सकता है सदर दरवाजे की सिटकिन रात को लगाना ही भूल गया हो।

भवतोष लौट आया। सोने के कमरे में गया। बच्चे उसी तरह

सो रहे थे। पर उसकी माँ कहां गयी ? चिल्ला कर पुकारना ठीक नहीं। फिर भी उसने पुकारा—'सुधा, सुधा !'

किसी तरहका उत्तर न मिला। चारपाई के नीचे ढूँढ़ना केवल वह भूल गया था, सो भी कर गुजरा।

बाहर अगर वह गयी है, उसे बाहर जाना नहीं कहा जा सकता—अभी लौट आयेगी। लेकिन वगैर उसे कहे, रात रहते वह कहां, क्यों जायेगी ? यह भी कैसे सम्भव हो सकता है। क्या रोज ही जाती है इस तरह ?

कुछ ले तो नहीं गयी ? भवतोष यही देखभाल करने लगा। चारपाई पर तकिये के नीचे सुधा की चिट्ठियां पड़ी रहती हैं। उलट कर देख चुका—कुछ कहीं नहीं केवल सुधा के तकिया के नीचे चाभी का गुच्छा पड़ा है। भवतोष का हृदय काँप उठा—चाभी जब आँचल से खोल कर छोड़ गयी है तो निश्चय अब वह नहीं लौटेगी।

चाभी से भवतोष ने सुधा का बक्स खोल डाला। जैसा उसने सोचा था—वैसा ही पाया—सुधा घर में नहीं रही। सुधा अपने हाथों की सोने की चूड़ियाँ खोल कर रख गयी है। ये ही चूड़ियाँ उसका अन्तिम आभूषण था और जो कुछ भो था, कागज के टुकड़े तक भूख की ज्वाला में भस्मिभूत हो चुका है। चूड़ियों के छोड़ जाने का अर्थ कदापि यह नहीं हो सकता कि वह सबको त्याग कर जा रही है। बल्कि हो सकता है दुख और मुसीबतों में काम आ सके इसलिये। अगर बम पड़ा, कलकत्ता छोड़ना पड़ा तो ये चूड़ियाँ काम में आयेगी इसीसे हाथ में पड़ी रहने पर भो उसने आज तक उसे छूआ तक नहीं था। उन्हीं चूड़ियों को उतार कर रख देने का मतलब क्या हो सकता है ?

साफ है—सुधा आत्महत्या करने गयी है। भवतोष के पहले, भवतोष को आँखों में धूल झोंक कर, अपनी पातिवर्त-धर्म को कायम उसने रखा।

पागलों की तरह भवतोष रास्ते पर चल पड़ा। बच्चे-बच्चियां सो रही हैं—सोती रहें—तब तक जब तक भूखकी ज्वाला लपलपा न उठे।

कहां जा सकती है सुधा? और कहाँ गङ्गा की ओर—जरूर। अभी गंगा में ज्वार आया है और सुधा तैरना नहीं जानती। सन्देह की कोई गुञ्जायश नहीं।

गङ्गा दूर नहीं है। गली से दाहिनी ओर मुड़ने पर चार कदम की दूरी पर ही। दौड़ता दौड़ता भवतोष गङ्गा के किनारे पहुंच गया। गङ्गा-स्नान करने वालों की इस घाट से उस घाट तक भीड़ जमी है—पर सुधा उस भीड़ में कहीं नहीं दीखती न घाट पर न गङ्गा की गोद में।

भवतोष का कलेजा बैठने लगा—वह निराश हो गया। काश वह सुधा के पहले मर सकता। वह अपनी आत्म हत्या का निश्चय कायम न रख सका।

फिर घर लौटना चाहिये। कौन जाने, हो सकता है लौटने तक सुधा कहीं गयी हो तो लौट आयी हो! शायद स्नानकर घर लौटी हो—गीले सरही चूल्हे में जलावन दे चुकी हो। पर बनायेगी क्या? चावल का एक दाना भी तो घर में नहीं?

फिर भी वह लौटी होगी—इसी कल्पना-जल्पना में भवतोष ने इधर उधर थोड़ी देर और बिता दिया मानो सुधा को लौटने का समय देर हो। हो सकता है अगर वह आत्म हत्या न करे तो सुधा को पाये जाय। अचानक उसे लोगों की भीड़भाड़ बड़ी अच्छी लगी। उसे अच्छी सूर्य की प्रथम किरणों की गर्मी, थोड़ी देर बाद बादल का घिरना। और जो कुछ अच्छा लगा

वह—सुधा का सौन्दर्य उसके शरीर का गठन। उसे लगा सौन्दर्य की एक ही रेखा है सुधा! मृत्यु की गोदसे काश सुधा को वह लौट सकता।

लौट कर जिस की कल्पना किये वह कमरे में आया ठीक उसके विपरीत ही उसने देखा छोटे रो रहे हैं, बड़ी शोक में गम्भीर हो बैठी है। बड़ी लड़की सावित्री लगभग दस साल की है। छोटे दो लड़के हैं। सबसे छोटी की उम्र तीन वर्ष की है।

'तेरी माँ कहाँ है?'—भवतोष ने सावित्री से पूछा।'

'वाह, तुम लोग तो साथ ही गये'

'क्या कहती हो, मैं तो उसे ढूंढ़ने गया था। कहीं नहीं मिली।'

सावित्री स्तम्भित हो गयी। दोनों अबोध बच्चे थोड़ी देर चुप रहकर पुनः तान तोड़ने लगे। सभी की धारणा थी पिता जी और माँ साथ ही गये हैं। ऐसी मुसीबत की कल्पना भी वे नहीं कर सके थे।

यह एक आश्चर्य चकित कर देनेवाली घटना है—क्या करे, कहां जाये, बच्चों को कैसे आश्वासन दे, भवतोष कुछ भी स्थिर नहीं कर सका। ढोल पीटने लायक यह बात भी नहीं लोग सुनेगें तो क्या कहेगें? लाश जबतक न मिले तब तक कोई विश्वास नहीं करेगा कि सुधाने आत्म हत्या कर लिया। इससे बेहतर था गलेमें रस्सी बांध सुधा छत से लटक जाती। इतनी हैरानी तो नहीं होती। लोगों को विश्वास तो दिलाया जा सकता।

तो क्या करे वह? बच्चों को क्या खिलाये? स्कूल कब जाये? इसके अतिरिक्त शाम को उसे ट्यूशन पर भी जाना है, नया ट्यूशन है।

सूर्य पहुंच गया पश्चिम की ओर—फिर भी सुधा नहीं लौटी। हिसाब के मास्टर काशीनाथ जी पड़ोस में ही रहते हैं उन्हीं के घर बच्चोंका खाना

पीना हुआ। पर कल? कल भी तो उसके चूल्हे में आग नही पड़ेगी तब कैसे छिपायेगा?—कितने दिनों तक छिपा सकेगा? क्या कल वह सुधा का मृत्य देह ढूंढ़ निकाल सकेगा?

शाम की ट्यूशन खोनी पड़ेगी, भवतोष को इसका बड़ा दुख है। लड़के का बाप बहुत कड़ा है, पांच मिनट देर से पहुंचने पर महीना काटने का भय बराबर दिखाता है, केवल एक दिन न पहुंचने पर बरखास्त कर देगा इसकी धमकी देता रहता है। सुधा को तो यह मालूम था।

केवल ट्यूशन ही क्यों? अबोध बच्चे, अयोग्य पति और अस्तव्यस्त गृहस्थी—सभी तो वही सम्भालती थी।

अंधेरे घर में वह चिराग जलाने की चेष्टा में सचेष्ट हुआ कि गली से कोई आता दीखा, शक नहीं—कोई स्त्री है। शरीर पर गन्दी साड़ी—किनारा कैसी है निगाहों की पकड़ में नहीं आयी—जैसे खड़ी नहीं हो सकती है ऐसी उसकी चाल तिस पर हाथ में एक छोटे गट्ठर की बोझ। भवतोष बाहर चबूतरे के पास आ निकला। सुधा ही है—भवतोष को तब तक विश्वास नहीं हुआ जबतक वह नजदीक न आगयी। और जब वह सामने आकर खड़ी हो गयी तब भी उसे यकीन नहीं हुआ पर उसने पूछ लिया—'यह क्या है?'

सुधा बोली—'चावल'।

'चावल?'—जैसे भवतोष ने कभी नाम नहीं सुना हो चावलका।

'हां, दो सेर चावल मिला है।'—सुधा हँसने लगी। भवतोष को लगा जैसे बहुत दूर चलकर, भीख मांग, कुड़े करकट से सुधा चावल उठा लायी हो—बोला—'कहां से लाई?'

'कन्ट्रोल की दूकान से। रात रहते गयी थी और लौट रही हूं अब। तुम लोग जाने कितना क्या सोच गये होगे।'—सुधा फिर पूर्ववत् हंसने लगी—अन्तर की स्वच्छता-सहित हंसी—'ठान कर गयी थी कि बगैर लिये नहीं लौटूंगी। बीचमें ही दूकान बन्द हो जाने पर भी लाइन में खड़ी रही। कितनी ठेलम-ठेल, कितनी भीड़ फिर भी एक पैर इधर-से-उधर हुई सर पर जोरों की बारिस भी हो गयी। खड़ी रही—खड़ी रही सोलह घण्टे। ओः—कितने मुंह से जलने भुलने लगे। उन्हें तो कुछ मिला भी नहीं जो मेरे पीछे खड़े थे। मर्दों को कतार की भी यही हाल। मेरे लेने के बाद ही सब खतम हो गया।'

'पर तुम इस तरह क्यों गयी?'

'वाह, कैसे जाती, अच्छी साड़ी पहन कर कण्ट्रोल की लाइन में चली गयी होती?'—कह कमरे में सुधा ऐसे चली गयी जैसे संसार विजय कर आई हो।

माँ के लौटने पर बच्चे-बच्चे का कोलाहल और भी तेज हो गया।

गली में, सामने भवतोष ने देखा एक मर्द को। दुविधा की वजह वह कभी गली के बाहर पैर रख रहा है और कभी दो कदम आगे बढ़ने की चेष्टा कर रहा है। यानी वह गली की ओर बढ़ा और आकर रुका भवतोष के मकान के दरवाजे पर।

उस आदमी की निगाहें अच्छी नहीं दीखतीं। घनी दाढ़ी शरीर पर एक फटा सिल्क का कुर्ता और मैली धोती। सर पर के बड़े बड़े बाल अस्त व्यस्त से।

दाये बाँये ताक-झांक के बाद डरते डरते उसने भवतोष से पूछा—'इस मकान में कोई औरत अभी गयी है?'

क्षण भर के लिये भवतोष पत्थर हो गया। बोला—'हाँ क्यों ?'

क्या, और कैसे वह कहे जो कहना चाह रहा है। आगन्तुक कुछ स्थिर नहीं कर सका—बोला—'कुछ काम है।'

'काम'—क्रोध से भवतोष की आवाज भारी हो गयी—'उसे तुम पहचानते हो ?'

'हाँ, नहीं ठोक नही फिर भी—'आगन्तुक इधर उधर करने लगा।

भवतोष कुचले सर्प को भांति क्रोधित हो उठा-बोला—'दो गली छोड़ कर सूड़ी खाना के पास आपकी पहिचानी आप को मिलेगी। वहीं जाइये। यह मकान वेश्याओंका नहीं गृहस्थ का है। जिसके पीछे पीछे यहाँ तक पहुचे हो—वह ऐसी वैसी नहीं।'

आगन्तुक इतनी बातों पर भी जाने को प्रस्तुत नहीं हुआ।

'मैं कहता हू, उटपटाँग कुछ मत खड़ा करो। सीधे यहाँ से निकल जाओ। नहीं तो शरीर पर सर नहीं रहेगा। मार तो मार पुलिस को भी पकड़ा दिये जाओगे।'

'मेरी गलती हुई माफ़ कीजियेगा—'आगन्तुक पुनः चारो तरफ कुछ पा लेने की इच्छा से ताक झाँक करने लगा। लेकिन भवतोषकी कड़ी—कड़वी आँखें देख चला गया।

किसी के साथ गर्मा गर्मी का आभास पा सुधा जल्दी से बाहर आयी। बोली—'वही शायद आया था ?'

'कौन ?' भवतोष नीचे से ऊपर तक जल उठा।

'वही, बेचारा······ वही तो था।'

'बेचारा ? देखता हू, बड़ी जान पहचान हो गयी है तुम्हारी।'

'क्या कहते हो ? उसे तुमने भगा दिया ?'—सुधा का कण्ठस्वर जैसे उसे ढूंढ़ रहा हो।

'नहीं, उसे बुलाकर खाटपर—सुला दूं—भवतोष अपनी आवाजको कुत्सित कर बोला—'वह एक बदमाश है। तुम क्या समझोगी तुम्हें क्या समझता है...'

'जो कुछ वह समझता हो पर मैं ही उसे बुला लाई थी।'

आस पास कहीं बम पड़ने पर भी भवतोष इतना नहीं चौंकता—जितना वह सुधा की बात सुन कर चौंकपड़ा बोला—'तुमने बुलाया था ? क्यों मैं जान सकता हूं ?'

'कुछ खाने को दूंगी, इसलिये। वह मेरे सामने ही मर्दों की लाइन में खड़ा था। दूकान बन्द हो जाने पर मेरे पैरों पर गिर कर बोला—घर में चावल की आशा से सभी बैठे होंगे। उसके जाने पर चूल्हे में आग पड़ेगी। वह स्त्री और बच्चों को आधा पेट खिलाता तो था, आप उपवास चार दिन से कर रहा है। उन लोगों को कम न पड़े—इसीलिये वह घर में कह देता था कि मेरा एक मित्र के घर निमंत्रण है। ऐसा आज वह किसी तरह नहीं कह सकता। तब मैंने कहा था, मेरे घर चलो पेट भर कर तुम खा लेना। पहले उसे विश्बास नहीं हुआ। विश्वास होने पर भी वह राजी नहीं हुआ—बालबच्चों के लिये चावल न ले जाकर वह कैसे खा-ले जायेगा। पर भूख की ज्वाला ने उसे अपने पराये की मोहमता से दूर कर दिया।'

आहिस्ते, आहिस्ते, भवतोष एक तीव्र घन और उग्र गन्धसे घिरने लगा जैसे उसका दम घुटता जा रहा है। आंखों की ज्योति लोप होने लगी है। पर यह सब कुछ नहीं, कुछ नहीं धूआं की उष्णता को वजहऐसा उसे महसूस हो रहा है।

———

कुत्ते

श्री सुशील जाना

रात का अन्त हो चुका है फिर भी अन्धकार नहीं मिटा। बरसाती बादलों के टुकड़े जमे हुए हैं आकाश पर। उसी छाये वर्षा की अधियाली में महकमा के सदर थाना से बाहर निकली कई अस्पष्ट मूर्त्तियाँ, गुमसुम-सी-कन्धे पर बन्दूकें।

इस्माइल आगे आगे चल रहा था। दो चार कदम आगे बढ़ते ही वह अस्त व्यस्त हो जमीन पर गिर पड़ा।

होशियार······

गन्दी गालियों की बौछार करता इस्माइल उठ खड़ा हुआ। पीछे से तीन आदमियों के टर्च का प्रकाश फैल गया! कई कुत्ते प्रकाश से अन्धकार में हो गये। एक स्त्री का आधा खाया हुआ शरीर पड़ा है इस्माइल के पैरों के पास—उसी टर्च की रोशनी में सभों ने देखा। गूँगी बूढ़ी इतने दिनों बाद मरी। थाना के सामने जो चुपचाप बैठी रहा करती और बीच बीच में चिल्ला उठती, सहज में नहीं समझा जा सके ऐसी भाषा में।

वह मरी है यहां आकर। क्रोधित इस्माइल ने बूट की ठोकर से बीच रास्ते से अलग कर दिया।

फिर वे चलने लगे।

पीछे से एक ने इस्माइल से मजाक किया—'थाने से निकलते ही इस्म-इल को ठोकर लगी इसीसे कहीं दूर इसे नहीं भेजा गया।'

'सभी को ठोकरें खानी पड़ेंगी।'—विकृत और कटु स्वर में इस्माइल ने कहा—'स्त्री और बच्चे मर रहे हैं लेकिन हर गांव में मर्द ताल ठोकते फिर रहे हैं। धान नहीं—चावल नहीं। सभी बारूद हो गया है। जब वे दौड़ पड़ेंगे, कमर कस लेंगे तब देख लेना। याद है पार साल की बात—ठीक इन्हीं दिनों की?'

इस्माइल के प्रश्न का किसी ने उत्तर नहीं दिया। मौन वे आगे बढ़ते गये। सभी को याद है पारसाल के आज की तरह के दिन—कीट पतंगों की तरह गांव से निकल पड़ा था किसानों का दल—घेर लिया था थाना और सरकारी दफ्तरों को। इसके बाद आग लहक उठी थी। वैसी ही आग इस बार भी लहक सकती है। दुर्भिक्ष की वजह विगत वर्षको याद कर। धान नहीं, चावल नहीं, सम्पत्ति नहीं—अन्न के अभाव में मरने वालों का दल फिर हमला कर सकता है व्यर्थ के दफ्तरों पर। इसी सम्भावना से, प्रतिरोध के प्रतिकार के लिये सदर थाने से सिपाहियों की छोटी छोटी टुकड़ी चल पड़ी है—शस्त्र-अस्त्र से सुसज्जित हो, गांव गांव के अन्दर चौकी—चौमुहानी की ओर! चुपचाप चल पड़े है वे। शहरसे दूर उत्सुक इस्माइल कहीं नहीं जा सका लेकिन। क्षुब्ध इस्माइल उन्हीं के साथ दुखी होता जा रहा है।

........इस शहर में क्या पड़ा है?

फिर रुका इस्माइल, बोला—'टर्च जलाओ तो?'

एक नहीं—दो हैं।

अधखाये दो मृतक शरीर उसके पैर के पास पड़े हैं। टर्च की कड़ी रोशनी पा एक कुत्ता भयंकर स्वर में भौंक पड़ा।

'साले कुत्ते—बन्दूक तो देना।'

'शहर में तो कुत्ते मारने के लिये रखे गये हो।'—फिर किसी ने व्यंग किया—'कारतूस फिजूल बरबाद करने से फायदा ?'

'हूं ठीक कहते हो। जिन्हें वह खा रहा है उन्हीं के लिये जरूरत पड़ेगी।'—इस्माइल बोला। उसकी आवाज में विद्रूप और विक्षोभ है—'कल से यहां मुझे कुत्तों को मारने के लिये ड्यूटी देनी पड़ेगी। आज्ञा मिल चुकी है आज।'

मृतक शरीर के अगल बगल से वे पुनः चल पड़े। शहर के अन्तिम छोर तक इस्माइल उनके साथ आया और वह छोटो टुकड़ी वहां से गांव की ओर बढ़ गयी। इस्माइल वहीं खड़ा रह गया ध्यान से सुनने लगा उन लोगों की व्यगोक्ति।

……प्रतिष्ठा-मान-सम्मान-सुअवसर और गणेश प्रसाद। हजारों तरह की चिन्ताओं ने भीड़ लगा लिया इस्माइल के मन में। वे चले गये, दूर इस्माइल के परिचित उस गाँव में—जो गाँव सड़े फोड़े की तरह इस्माइल के हृदय में घृणित हो चुका है। जिस गाँव का निवासी गणेश प्रसाद अफसर हो गया है। पारसाल की घटनाओं से सुअवसर पा कर। याद है—सन्ध्या की मटमैली अंधियाली लाल हो उठी थी—अग्नि की तरह। धूंए के कारण दम घुटने लगा की जनता की गगन कम्पित आवाज से हृदय भी काँप उठा था—हाथ कांप उठे थे। पास हो सिर्फ गणेश प्रसाद बन्दूक का निशाना साधता चल पड़ा था।

सबेरा हो चुका है। दूर पर अवस्थित बाँस की टट्टी से छाई झोपड़ी की ओर देखा इस्माइल ने। शहर के एक किनारे उसी चावल के गोदाम में रात रात भर उसे पहरा देना पड़ेगा। वहाँ भूखी जनता कभी टूट न सकेगी। तिसपर श्मशान की तरह यह शहर। सड़क पर इधर उधर मृतक शरीरों से उलझे कुत्तों का जमाव। रात के अन्धरे में कुत्ते झपट पड़ते हैं भूखों के, अधमरों के ऊपर। रात भर नोच खसोट कर खाते हैं। उन्हीं कुत्तों पर गोली चलानी होगी, मारना होगा—मन ही मन इस्माइल कह उठा। और वे चले गये हैं—टुकड़ियों पर टुकड़ियाँ चली गयी हैं—प्रतिष्ठा-सुअवसर-अफसर गणेश प्रसाद।

विक्षुब्ध हृदय से शहर की ओर से इस्माइल ने मुँह फेर लिया।

तभी उसके सामने एक आदमी आ खड़ा हुआ। उसके मुखमण्डल पर घनी दाढ़ी है—आँखों में खोया खोया-सा भाव।

'सलाम, सिपाही जी!'

इस्माइल ने उसकी ओर देखा—सन्देह की दृष्टि से।

वह भय से दो कदम पीछे हट गया। घबड़ाता हुआ रुक रुक कर उसने जो कुछ कहा उसका अर्थ है कि वह नौकरी चाहता है सरकारी अन्न के गोदामों में बहुत से कुली काम करते हैं—सुबह से शाम तक केवल चावल के बस्तों को उतारना चढ़ाना। इस्माइल को वहाँ पहरा देते उसने देखा है। शायद वहाँ उसकी नौकरी वह लगादे—उसकी पत्नी, बाल बच्चे बगैर खाये मर रहे हैं।

वह आदमी इस्माइल के पैरों पर गिर पड़ा।—'दया करो सिपाही जी। कुली के सरदार से आप कह भर दें।'

उस आदमी को देख कर जैसे तलवे का खून इस्माइल के सिर पर चढ़ गया। अपने मजबूत पैरों को ठोकर से इस्माइल ने उस आदमी को अपने सामने से दूर कर दिया। मन ही मन कहने लगा—यही, अनगिनत जीवन के विनियम ने तो गणेशप्रसाद के जीवन को ऊपर उठा दिया है। ऊतनी ऊंचाई पर जितनी ऊंचाई पर पहुंचने की इस्माइल की आकांक्षा की कोई सीमा नहीं। केवल उसके संकीर्ण जीवन में पशुता वेग से करवट बदल रही है। उस आदमी की हत्या कर देने की इच्छा हुई इस्माइल की।

वह आदमी झपट क्यों नहीं पड़ता इस्माइल पर।

इस्माइल चला गया शहर की ओर। कुछ क्षण वह आदमी उसी तरफ देखता रहा। पुनः धीरे धीरे सरकारी गोदाम की ओर बढ़ गया। वहाँ धान और चावल से लदी लारियाँ लगी हैं। काम शुरु हो गया है। लारियों से बीस बाइस कुली माल खलास कर रहे हैं। एक बूढ़ा कर्मचारी दरवाजे पर बैठा वजन लिख रहा है। उसी बूढ़े की ओर देखता रहा वह आदमी। प्रतीक्षा करने लगा सरदार हबीब खाँ कब भीतर से निकलता है?

वह अवसर आया। वह भटकता भटकता उस बूढ़े के पास जा पहुंचा—एक ही साँस में कह गया उपवास की बातें—अपनी स्त्री और बच्चों की बातें—सभी बातें।

'तेरा नाम क्या है?'

'माधव'

'अच्छा, कल से आना। हबीब को मैं कह दूंगा। पर दो आने रोज मुझे देने पड़ेगें बच्चू! आठ आना तुझे मिलेगा।'

'देगे बूढ़े बाबा।'—आनन्द से माधव खिल उठा।

अचानक वहाँ हबीब आ खड़ा हुआ, बोला—'यह क्या काम करेगा ?'

'क्यों ?'

'अरे यह तो लंगड़ा है।'

'तुम जानते हो इसे।'

'एक ही गाँव के हम हैं—जानता क्यों नहीं ? पारसाल 'तोड़ फोड़' में यह थाने में आग लगाने गया था। वहीं तो इसके पैर में गोली लगी थी। इसके बाद कहाँ भाग गया था—पता नहीं चला।'

'पुलिस ने इसे नहीं पकड़ा !'

वे माधव को नहीं पकड़े—पकड़े माधव की तरह किसानों को। क्यों नहीं पकड़े—माधव यह नहीं जानता केवल वह जानता है गाँव में अन्न नहीं है—सारे विश्व में केवल नहीं नहीं और जीवन में आ गयी है सिर्फ एक आदि अन्त हीन निराशा। इस एक वर्ष में ही उसकी गृहस्थी तहस नहस हो गयी—पिता चल बसे—जमीन जायदात चली गयी—एक पैर भी चला गया उसका। आज उसका कोई मूल्य नहीं। दोनों हाथों से बूढ़े कर्मचारी का पैर पकड़ लिया उसने—'बचाव दादा !'

'अरे लंगड़े को भर्ती कर क्या होगा—भाग भाग, भगा न रे हबीब !'

मजदूरोंने ठेल-धकेल कर फाटक के बाहर कर दिया माधव को।

रास्ते पर माधव खड़ा रहा कुछ क्षण तक। उसे याद न आयी गाँव की, उसे याद न आयी घर की, उसे याद न आयी किसी के व्याकुल प्रतीक्षा की। आज दो दिन बीत चुका उसे शहर में।...'

इसके बाद वह चौक पड़ा बन्दूक की आवाज से। फिर कर उसने देखा कई कुत्ते एक एक कर लुढ़कते जा रहे हैं—आधे मृतक शरीर के

पास और सुबह को जिस सिपाही को उसने देखा था वही बन्दूक ताने बढ़ा आ रहा है माधव की ओर—वे कई हैं। माधव भयभीत हो उठा। अभी वह मानो पर जायेगा—उन्हीं कुत्तों की तरह। निराशा से कएक मुहुर्त बह देखता रहा—मानो अपने आपको बचाने की क्षमता उसमें नहीं। पुनः एकाएक लंगड़ाता हुआ दौड़ पड़ा। माधव—जीवन की अँधेरी ताड़ना से। जो मर कर भो नहीं मरता—दौड़ कर कहीं छिप जाना चाहता है वह। वह पत्नी को देख कर भी इसी तरह छिपने की चेष्टा करता है। पर छिपने की जगह नहीं। उसी छोटे शहर के मैदान के आमने सामने सीधी सड़क पर कार बार, दूकाने और मुनाफा उसी भीड़ में उसे मिलती है मैना—जैसे मिला करता हैं सुबह के बाद शाम को, जगल के जीव-जन्तु-वैसे ही।

भटकता चला माधव और उसकी पत्नी चार वर्ष के हाथ भर के बच्चे को कलेजे से चिपकाय जा मिली क्षुद्रातोके भीड़ में एक दिन।

वे इकट्ठे होते हैं गोदाम के सामने। धान चावल से लदी लारियाँ सुबह से ही इकट्ठी होने लगती हैं। गोदाम में माल खलास करते समय फटे बोरों से जो कुछ मिट्टी में जमीन पर गिर जाता है—उसी को बटोरते रहते हैं, कुत्तों की तरह लड़ते-झगड़ते हैं सारा दिन। और रात को अंधियाली में कुत्तो का गिरोह टूट पड़ती है उन पर—जो प्रतिरोध नहीं कर सकते, जो सोये रहते हैं—विवश शरीर पर। गोलियों का शिकार होते हैं फिर भी नहीं मानते। गाँव-गाँव से चले आते हैं आदमियों के साथ, प्रत्येक दिन—आदमी की ही तरह—और मरते।

माधव गोदाम के आस पास चक्कर लगाता जाने क्या सोचता रहता है

छाती की हड्डियाँ क्रमशः स्पष्ट होतो जाती, मुँह पर की बढ़ी दाढ़ी और बे-तरतीब से बढ़ गयी मूछों की वजह वह जानवर के शक्ल का दीखता।

इसके बाद एक दिन रात के गम्भीर अन्धकार में अचानक भूत की तरह खड़ा खड़ा देखा उसने—इस्माइलकी टर्च की रोशनी मैना के मुख मण्डलपर पड़ी और पुनः लुप्त हो गयो। हँसती है मैना, आकर खड़ी हुई है गोदामके दरवाजे के सामने। गोद का बच्चा नींद में मस्त कन्धे पर लुढ़का है।

इसके बाद पास की एक दूकानकी छावनी के नीचे बच्चे को सुला मैना फाटकके भीतर जा पहुँची। धुलमिल गयी गम्भीर अन्धकार में।

माधव जैसा का तैसा खड़ा रहा। पुनः वह चौक उठा एक क्षीण आर्तनाद पाकर। करीब तीन चार कुत्ते की दबो गुर्राहट की वजह आर्तनाद लोप हो गयो। अन्धेरे में कुछ नहीं दीखता फिर भी उसे लगा कि मैना की आशा, सोये बच्चे के ऊपर कुत्ते लड़ झगड़ रहे हैं। असहाय-सा माधव खड़ा रहा। जैसे कुछ करने जानेपर निस्तब्ध रात्रिको शान्ति भंग हो जायेगी। कई क्षण बाद मैना की अस्पष्ट छाया मूर्त्ति गोदाम के दरवाजे से बाहर आयी। बच्चे को जहाँ वह सुला गयी थी-वहाँ पहुँच वह अस्फुट आर्तनाद कर उठी। कुत्ते उसे देखकर ग्रासभरे मुँह से गुर्रा उठे।

इसके बाद उसी गम्भीर अन्धकार में कान लगा कर सुना माधवने—किसी के रोने की ध्वनि—बिल्कुल स्पष्ट, गला चाँपकर रोनेको स्वर लहरी। उसके कलेजे में जाने कैसा, क्या होने लगा। जाने क्यों डर-सा लगने लगा उसे।

इस्माइलने भी सुना—गौरसे और पुनः बूट की मचमचाहट में सब कुछ

लोप हो गया। इस्माइल टहलता है और सोचता है भूख··· मौत, इसके सिवा क्या है इस शहर में। वे सबके सब चले गये हैं घाटियों पर-धन, प्रतिष्ठा, मान सम्मान··· गणेश प्रसाद।

जिस तरह नदी के बाँध टूटने पर श्रोत टेढ़ी मेढ़ी भँवर लगाती है, उसी तरह चक्कर लगाने लगा इस्माइल निस्तब्ध शहर और प्रान्तमें। उस गोदाम पर कभी किसीके झपटनेकी हिम्मत नहीं हो सकती—अभागा इस्माल कहीं भी नहीं जायगा। अपने आपको धिक्कारता है इस्माइल।···और गणेश प्रसाद···पार साल वाला बहादुर गणेश प्रसाद धन सम्माम···पुरष्कार।

दूसरे दिन सन्ध्याकी झुटपुटी अँधियाली में मैंना को ढूढ़ निकाला माधवने, दोनो ने फुस फुसाहट भरे शब्दोंमें जाने क्या बातें की। मैंना रोती है—फूट फूट कर रोती है।

वे दोनों प्राणी बैठे रहे —

रात, भयंकर निस्तब्धता घिर गयी। वे दोनों प्राणी बढ़ चले—गोदाम की ओर। पास पहुंच कर ठिठक गया माधव। दबी आवाज में बोला—'आगे तू जा।'

माधव खड़ा रहा। मैंना आगे बढ़ गयी-उस गोदाम के दरवाजे पर। इस्माइलकी टर्च की रोशनी चमक उठी। प्रकाशकी झलक में दीखी मैंना। इसके बाद वह दरवाजे के भीतर हो गयी।

दोनों हथेलियों से आँखें रगड़ कर जानवरों की तरह देखता है माधव। फिर वह गोदाम के पिछवाड़े जा खड़ा हुआ। उसके हाथमें एक कटारी चमकी। उसी कटारी से वह सर्तकता पूर्वक गोदामका बेड़ा काटने लगा। कई क्षण बाद उसने उसी सेंध से अन्दर प्रवेश किया। चावल की

उमस भरी गन्ध से दम अटकता जा रहा है जैसे। और हृदय पर जाने कौन हतौड़े का आघात कर रहा है।

चावल के एक वजनी बोरे को खीचातानी करने लगा। लेकिन व्यर्थ जोर जोर से सांस लेने लगा, कुछ चावल के दाने जमीन पर गिरा लिया उसने।

इतना अन्न ···काश यह सब चावल ले जा सकता वह किसी तरह बोरे को खीचते घसीटते लाया—बाहर। कई बार की चेष्टाके बाद सिर पर उठा सका वह। इसके बाद पैर चाँप कर आगे बढ़ा-पैर काँपने लगे, सर चकराने लगा, दम अटकने लगा। मानो पैर तले की जमीन खिसकती जा रही है, मानो अन्धेरे में वह खोता जा रहा है।

···फिर सर का बोझ जमीन पर गिरकर बिखर गया और माधव चक्कर खाकर लुढ़क गया। काले बादल, पृथ्वी क्रमशः निश्चिन्ह होने लगी, बहुत दूर से कुत्तों के भौंकने की आवाज आने लगी और पैरोंकी आहट भी मिली।

मौसम की अन्तिम रात, झिंगुर की झंकार और मेढ़कों की टर्र-टर्र। मैना चली गयी है। इस्माइल बीड़ी का कश ले, बन्दूक सम्हाल उठ खड़ा हुआ। कई कुत्ते गुर्राते भाग निकले गोदाम के पिछवाड़े। इस्माइल की टर्च की रोशनी चमक गयी। वह कन्धे पर बन्दूक रख चल पड़ा उसी ओर।

कुत्तों को निशाना बनाना है उसे।

माधव को सेंध की गयी जगह पर इस्माइल की टर्च की रोशनी जा पड़ी—'अरे'—उसका हृदय धक् से रह गया। गणेश प्रसाद उसके सामनेसे जैसे निकल गया।

बहुत नहीं हैं—वे नहीं आ सकते यहाँ, कभी नहीं....केवल—एक को तो अवश्य अपनी बन्दूक का निशाना बना देगा, इस बार उसके हाथ नहीं काँपेंगे, हृदय नहीं काँपेगा।

एक छोटा सा यंत्र मानो विद्युत के स्पर्श मात्र से गरज उठा उसके अन्तस्तल में।

टर्च का प्रकाश फेंका चारों तरफ इस्माइलने। फिर बन्दूक सम्हाला और उसी ओर बढ़ गया।

चावल के बोरे सुरक्षित हैं। कई कुत्ते गुर्रा रहे हैं—शायद कई मनुष्य उनसे घिरा है।

उसी निस्तब्ध और घनीभूत अँधकार में आस पास दो तरह का आदेश-मनुष्य और-कुत्ते-मृत्यु! जाने क्यों वह अस्तव्यस्त होता जा रहा है। कठोर पंजो में बन्दूक सम्हाले क्षणेक स्तब्ध, उलझा सा खड़ा रहा इस्माइल किसे निशाना बनाये—मनुष्य या कुत्ते को?.......

——

घर और बाहर

श्री अनील कुमार सिंह

उमापद हमेशा ही गप्प गोष्ठीसे अधिक रात बिताकर घर लौटता है। चारो तरफ पत्थरकी तरह निस्तब्धता। मुहल्लेके सभी लोग सो गये हैं। सिर्फ रह रह कर एक मर्दके गलेकी आवाज सुन पड़ती है—बड़बड़ता-सा जाने कौन बक झक रहा है। उमापदके दरवाजेपर दस्तक देते ही दरवाजा खुल जाता है। सीता जैसे तैसे एक किनारे जा खड़ी होती है।

उमापद प्रश्न करता है—'मुँह ऐसे हड़ियेकी तरह क्यों फूला है? आज कितना कमा सकी?'

'खाक पत्थर'—सीता फुसफुसाहट भरे स्वरमें बोलती।

'इसका मतलब? शायद आज रास्तेपर खड़ी नहीं हुई।'—क्रोधसे उमापदका चेहरा विकृत हो जाता।

'कौन कहता है नहीं खड़ी हुई? साँझसे अब तक तो खड़ी रही।'

'ओ सभी आदमी देवता बन गया है न? उल्लू बनाती है! कहाँ है पैसे? जल्दी दे, ला दे।'

'तुम्हारी कसम, आज एक भी बाबू नहीं आया।'—सीता भयसे पत्थर हो जाती।

'दत, क्या कहती है ? सभीको बाबू जुट जाते हैं और तेरे लिये जैसे हड़ताल करते हैं। ठहर, तेरी बदमाशीका मजा चखाता हूँ।'—उमापद सीताकी तलाशी करता है—कहीं छिपाकर शायद रखती हो। इसके बाद लकड़ीकी सन्दूक, ताखे सभी कुछ देखता। कुछ न मिलनेपर उमापद फट पड़ता। कहता—'अच्छा रोज रोज यह कैसी बेवकूफी शुरू कर दी तूने, बता तो ? कलसे भूखे ही मरना होगा ख्याल है न ? लड़ाईका जमाना है—दोनों हाथसे पैसे बाबू लोग लुटाते हैं और तेरी किस्मतमें कोई नहीं जुटता ?'

'विश्वास करो ?'—सीता बिगड़ उठती—'अपनी पत्नीको बजारमें खड़ी कर इतनी फुटानी।'

'चुप रह हरामजादी। चिल्लाकर मुहल्लेको सरपर मत उठा!'—उमापद गीले अगौछेसे मुँह पोछता—'यही तो रूप है तेरा—बाँसके सिकंचोंकी तरह शरीर। क्या देखकर कोई तुझे पैसा देगा ? रास्तेपर खड़े होने ही से नहीं सब कुछ होता, आदमियोंको रिझानेकी अदा भी होनी चाहिये।'

सीता, गुस्सेसे, दुखसे जलभुन जाती—'किसी दिन वह अदा भी थी। तेरे पास जबसे आयी तबसे नाश हो गयी।'—वह अबोध बच्चीकी तरह रो पड़ती।

उमापद जवाब नहीं देता। यह प्रसंग यही रुक जाता। पुरानी-फटी कथरी बिछाकर वह सोनेका उपक्रम करता। सीतासे भोजन मांगनेका साहस नहीं करता।

एक ही तरहकी घटना बीच बीचमें घटती पति-पत्नीमें बातोंकी बेतुकी होती। उमापद धौल भी जमा देता। मुहल्लेके लोग पञ्च होकर आते।

उपदेश देते। सीताको उसके सामनेसे हटा लेते। लड़ाई रुक जाती। दोनों भूल जाते पुरानी बातें।

सीता दिनको कहीं चौका करती है, रातको अड्डेपर जा खड़ी होती। और उमापद चायकी फेरी करता। हाथमें चूल्हा जिसपर चायकी टोंटीदार कलसी और बगलमें मिट्टीकी चुक्कड़की थैली। दो पैसे चुक्कड़ चाय। कलसीकी टोंटीसे चाय ढालकर वह चाय बेचता। कितने तो घलुआके लिये चुक्कड़ उसके सामने कर देते। जिसपर मुँह टेढ़ीकर वह कहता—'घलुआ! चा, चीनी, कोयला—आजकल मुफ्तमें मिलता है न?'

शानमें आकर खरीदार चुक्कड़ उछालकर फेंक देते और पैसा दे रास्ता नापते।

पहले चाय बेचकर वह गुजर कर लेता था। अब नहीं होता है। चीनी, कोयला चोर बाजारसे खरीदना पड़ता फिर अकालमें दाने दानेको मुहताज होने पर चाय कौन पिये। उसके वे ही तो खरीदार थे—फुटपाथके निवासी, मुहल्लेके मजदूर, रोज कुआँ खोदकर पानी पीने वाले—सो दाने दानेका मुहताज होकर कीड़े मकोड़ेकी तरह मरने लगे हैं। सभी चीजें महँगी हो गयी हैं। चीनी बारह आने सेर। तिसपर भी टान घसीटकर इतने दिनों उमापद चलाता रहा। पर दो महीनेसे वह विवश हो गया है। आयके साथ साथ व्यय भी बढ़ता गया। उसे लाचार होकर घर बैठना पड़ा। किसी दिन चना चबाकर ही पड़ रहता। इसीसे उसने अपनी पत्नीको अड्डेपर जाने पर मजबूर किया। जैसे भी दो पैसेकी आय हो वही करना पड़ता है लाज शर्म की गुंजायश नहीं। मुहल्ले की कई औरतें अड्डेपर जाती हैं। सीता भी रातमें दो पैसे कमा लेती है। तभी तो हाथके साथ मुहँका प्राचीन सम्पर्ककी रक्षा होती जा रही है।

वेश्यावृत्ति ? कौन किसने वेश्यावृत्त नहीं की। भूखकी जलनमें जाने कितने जल-जलकर दिन काटते हैं तिसपर धर्म और नीति ? उमापद अपने आपसे ही विचित्र प्रश्नोत्तर करता। आज कल पत्नीके साथ उसका सम्बन्ध अर्थकी वजह है, किसी प्रकारका मानसिक और शारीरिक नहीं! वह दूर दूर रहता। किसीके दरवाजे या बगीचेमें बैठकर गप्प करता रहता है। अधिक रातको घर लौटता। उस समय भी सीता खड़ी रहती दरवाजे पर। मुहँपर खड़ी मिट्टियाँ पोते, आँखोंमें काजल, ओठों पर पानकी लाली रचाये। भले आदमी उसे देखकर प्रेतकी तरह हँसते। सीता खिलौनेकी तरह सभी पर अपनेको लुढ़का देती। और क्या करे। कुछ कमा सकी तभी कल चूल्हेंमें जलावन पड़ेगी। बहुत कर्ज हो गया है। कमरेका किराया भी कई महीनेसे नहीं दे सकी है।

कभी कभी सीता दुखी होकर कमरेमें बैठी रह जाती है। यह सोचकर कि पुराने ग्राहक ठिकाना जानते हैं—हो सकता है उनमें—से दो एक आजायें लेकिन उसका दुर्भाग्य, कोई नहीं आता। उसे दरवाजेपर खड़ा होना ही पड़ता। जीवनका वृहतम असम्मानसे बोझिल होकर वह खड़ी रहा करती। शर्मसे उसे अपना मुहँ छिपानेकी इच्छा होती—कोई जान पहचानका अगर देखले उसे! रास्तेके आने जाने वाले उसे देख व्यंग से खिलखिलाते मुहल्लेके लंफगे लड़के उसे देखकर अजीब तरहसे खाँसते खखारते।

'चावलकी दूकानके सामने औरतोंकी लाइनें। कल सवेरे कहीं चावल मिलेगा। उसके लिये अभीसे सब आ खड़ी हुई हैं। खड़ी खड़ी वे थक जातीं—दोनों पैर गतिहीन होता जाते। सीता रोना चाहती है। फिर भी जीवित रहना ही पड़ेगा—मान, मर्यादा सतीत्व शायद मनुष्यत्व भी जलकर पेटकी

ज्वालामें राख हो चुका है। केवल एक प्रश्न महत्व पूर्ण होकर सामने आ खड़ा हुआ है—मनुष्यके जीवित रहनेका—जीवनको विकृत कर और असम्मानके साथ।

उस दिन एक बाबू को पकड़ लाती है सीता। किसी लोहेके कारखाने में वह काम करता है। तनख्वाहसे अधिक ऊपरी कमा लेता है। चेहरे पर चिकनाहट है। छोटे छोटे सरके बाल दस आना और छ आनाके हिसाब से सम्हाले हुए है। सीता उसे सम्मानके साथ बैठाती है। वह जाते समय सीता को आठ आना अधिक दे जाता है। वह कहता भी है—'कितनी दुबली पतली है! कितने दिनों तक सौदा कर सकेगी? आठ आना और ले, दूध पी, खाया कर। समझी।'

सीताका दम अटक गया। रुक रुक कर साँस लेती है। शरीरकी शक्ति जैसे किसीने चूस ली हो पल भरमें। उसके पैर दोनों काँपने लगे फिर भी वह फीकी हँसी हँस कर बाबूसे अनुरोध करती है—'फिर आइयेगा।'

वह चला गया, दरवाजा बन्दकर सोनेका उपक्रम करने लगी सीता। उसके खड़ियामिट्टी पुते गालो पर से आँसू बह चले—क्यों? क्यों वह तिल तिल कर किसीके आनन्दके लिये अपना शरीर गलायेगी! आदमी महामारीका आह्वान अपने आप करता है और मैं अपना मान, सम्मान, सतीत्व उत्सर्ग कर उसके लिये 'क्या क्या' क्यों जुटाती रहूँगी? तुम मुनाफा के लिये धान, चावलके बोरे कोठरियोंमें बन्द रक्खोगे और मैं उसके लिये वेश्या होकर नारीत्वका हनन करूँगी? क्यों? क्यों हजारो लाखो आदमी रातको मुठ्ठी भर अन्नके लिये तुम्हारे दरवाजे पर सदा लगायेगें?—सिसक सिसक कर सीता रोने लगी।

उमापद को आज कल कोई कर्ज नहीं देता पहलेका कर्ज ही वह नहीं सोध कर सका है फिर कौन कर्ज दे। चा, चीनी और दूधके लिये पूँजी इकट्ठी किसी तरह कर लिया उमापदने। अगर यह खर्च कर दे तो उसका व्यवसाय बन्द हो जायगा। बड़ा दिमाग हो गया है चोर बजार वालों का। उमापद सोचता है—हमलोगोंका दिन अब आ रहा है। समानताके साथ जोते रहनेका दिन। उस दिन तुम सभी लोगों को देख लेगें। यह सारी बातें उसके ओठोंके भीतर ही कसमसाती। उसका भाई रमापद उसे याद पड़ता है। हृदय आलोड़ित हो उठता है उसकी बातासे। बजबजके किसी पाटके मिलमें वह नौकरी करता है। वह चटकलके यूनियनका एक ईमानदार कर्मचारी है। सरदारसे प्रतिरोध करने पर ही उसकी नौकरी छूट गयी। उमापद भूखकी धधकती ज्वालाकी वजह सोचता है—यह कैसा अमानुषिक व्यवहार है—मदान्ध शक्तिशालियोंका यह पाशविक जुल्म है। रमापदने कहा था कि स्वर्ग-राज्य एक दिन सचमुच उपभोग करने को मिलेगा? हो सकता है कि उसके तरह कितने मनुष्य को खून देना पड़े, अपनी बलि देनी होगी।

भूखसे उमापदका पेटे ममोड़ता है। फिर भी सीतासे भोजन मांगनेका साहस वह नहीं करता। वह जानता है रंधन होने पर निश्चय ही उसे सीता खाने के लिये पूछेगी। उमापद का क्रोध ठडा पड़ जाता है। लेटा लेटा वह बीड़ीका कश खीचने लगता है। सीता मुरझाई-सी पड़ी रहती पूराने गद्दे के एक ओर। उमापद सहानूभूति और बेवशीसे उसकी ओर देखता। एक सबल जीवन का स्वप्न उसकी आँखोंके सामने सकार हो जाता। सीता उठ थालीमें पड़ी रोटी लाकर उमापदके हथेलीपर रख देती—'यह लो। सबेरे दो

रोटी बचा ली थी। इस समय भोजन नहीं बन सका। कोयला था ही नहीं। कल सबेरे क्या होगा, मैं नहीं जानती।'

उमापद झटपट उठ बैठा, बोला,—'तूने अपने लिये नहीं रखा?'

'यह क्या है।'—सीता हँस पड़ी पुराना तूफान लेश मात्र भी उसमें नहीं दिखता—अब

रोटी खाते, चबाते उमापदने कहा—'इसी तरह अगर रहा तो एक दिन हमें भी फुटपाथ पर जाना पड़ेगा सीता।'

'अभी भी अन्तर क्या है? हम क्या मनुष्य अब रहे? इस तरह तो रास्तेके कुत्ते भी पेट भरते हैं।'

'ठीक कहती है। इसी तरह कुत्ते बिल्ली भी पेट भरते हैं।'—उमापद ने पानीका ग्लास उठा लिया—'पर हम लोगोंका समय अब आ रहा है—समझो हमारे जीवित रहनेका दिन। रामपदो उस दिन कह रहा था।'

दूर अवस्थित मजुमदार की कोठीमें दो बज गया। उमापदके पास जैसे तैसे सो जाती सीता।

और दिनोंकी तरह दूर नहीं होता उमापद घृणासे—सीता के स्पर्शसे दूर। इस पतित सीताको छोड़ कर जीवन संग्रामकी समतल भूमिपर समक्ष अपस्थित हो झंको झोर देता एक और जीवन। उसे याद पड़ती रमापदोंको बातें।

उमापदने बहुत दिनोंके बाद सीताकी केश राशिका स्पर्श किया। जाने क्यों सीता रोना चाहती है। फूट फूट कर रोती है वह।

तभी अचानक दरवाजेपर किसने तीन मरतवा दस्तक दी। सीता चौंक कर उठ बैठी।

उमापदने विस्मयसे पूछा—'कौन है इतनी रात को ?'

'तिवारीजी आये हैं—देरसे आनेकी ही बात थी।

उमापद दृढ़ आवाजमें कहना चाहता है—'कहदो लौट जायें……,लेकिन नहीं वह बच्चोंकी तरह असहाय हो गन्दी और फटो तकिया बगलमें दबा कमरे के बाहर हो गया।

आकाशपर अर्ध चन्द्र—उमापद बीड़ीका कश चीखता है। मुहल्लेका लुहार किसी फिल्मके गीतकी लाइन दुहराता है ध्यान पूर्वक सुनता है उमापद।

——

[भूखों की बस्ती

नमूना

श्री मानिक वन्द्योपाध्याय

सिर्फ केशवकी ही नहीं—ऐसी अवस्था अनेकोकी हुई है। अन्न नहीं पर अन्न प्राप्तिका एक उपाय मिल गया है—नारीके विनिमय से। कई बोरे अन्न, नारीके वजनसे दो-तीन गुना अधिक, साथ ही कुछ नकद रुपये भी जिससे कुछेक कपड़े खरीदे जा सकें।

वर्षभर पहले भी केशव एक अच्छे वरकी तलाश कर चुका है, नगद जेवर, कपड़े और सोने चाँदी सहित शैलको दान करनेके लिये। लड़कीको यथाशास्त्र, यथाधर्म, यथारीति ही सर्वस्व दान करनेपर वह प्रस्तुत था लेकिन उसका सर्वस्वका अधिक न होना जैसे सत्य है वैसे ही काम चलाऊ ग्राहक भी नहीं जुटा। शैलका रूप न कि काम चलाऊ है अर्थात् दिनपर दिन वह दो कदम आगे बढ़ती ही जा रही है।

तलाश करते रहनेपर वह अपने लिये, पत्नी, छोटे छोटे बच्चों और शैल के लिये अन्न इच्छानुसार जुटानेमें समस्त धनसम्पति खो चुका है, अच्छी तरह समझनेका अवकाश भी केशवको नहीं मिला। बड़े लड़केका व्याह कर चुका है, लड़का नौकरी करता था, स्कूलमें तैतालिसरुपयेकी मास्टरी। वह लड़का मर गया है एक विशेष प्रकारको मेलेरिया से। मेलेरिया ज्वर जो

एक सौ ६ डिग्रीसे आता था और पाँच दिनके ज्वरसे ही जवान लड़केकी मृत्यु हो गयी।

कई और लड़कियाँ केशवको मर गयी हैं, साधारण मेलेरियासे भुगत भुगत कर। यह मेलेरिया ज्वर केशवके परिवारका पुराना दुश्मन है। इसके अस्त्र कुइनाइनके साथ उसका परिचय बहुत दिनोंका है। बच्चों को जब कुइनाइन निगल जानेकी क्षमता नहीं थी, तब पानीमें घोलकर पिलानेपर मैदा और आटेका रूप हो जाता।

सदय डाक्टरने कहा—'पगले, वह बहुत अच्छी कुइनाइन है। नयी तरहका, खूब एफेक्टिव। नहीं तो कभी मैं इतना अधिक दाम लेता।'

लड़कीके मर जानेपर सदय डाक्टर नाराज हो गया था। हाकिमकी राय की तरह, शासकके शब्दोंमें उसने कहा था—'आप लोगोंने ही मारा है उसे। कुइनाइन सिर्फ कुइनाइनसे नहीं ज्वर उतरता? पथ्य भी चाहिए। पथ्य न देकर ही मार डाला लड़कीको—सिर्फ पथ्य न देकर।'

शैलसे वह लड़की छोटी थी करीबन डेढ़ सालकी। वह थी भी शैलसे अधिक सुन्दर। आज उसके विनिमयसे भी अन्न मिल सकता था। कई बोरे अन्न और नकद रुपये ऊपर से।

किन्तु उसके लिये केशवके हृदयमें कोई दुख नहीं। वह तो ऐसा सोचता है कि उसका मर जाना ही अच्छा हुआ। वह भी एकको बोझसे मुक्त हो गया।

शैलको खरीदा कालाचन्द ने।

कालाचन्दका मुँह मीठा है। उसकी बातें बहुत पवित्र और मीठी हैं। उसके चेहरेपर गोराई है और छोटी छोटी आँखोंमें स्थित निस्तेज निष्काम

दृष्टि। रावणके द्वारा अधिकार पाकर धार्मिक विभीषण जिस दृष्टिसे मन्दो-दरीको घूरता था, कालाचन्द उसी दृष्टिसे नारीको देखता रहा है। इसके अलावे कालाचन्दकी तुलना विभीषणसे नहीं हो सकती। पाँच वर्ष हुआ कालाचन्दके भाई जाने किस कारण स्वर्ग सिधार गये हैं। भाईके दो नंबर की वेवारिस पत्नीको—स्नेह तो क्या करता कालाचन्दने उसे जबरदस्ती एक मकानका मालकिन बना दिया। वह कालाचन्दका पारिवारिक मकान नहीं है। बहुत दूरके किसीका किरायेका मकान है। उस मकानमें तब दस बारह स्त्रियाँ रहा करती थीं। उसके बगलके मकानको भी कालाचन्दने कुछ दिन आगे किरायेपर लिखा लिया है। दोनों मकानका स्त्रियोंकी संख्या अठारह-सतरह होगी। कालाचन्दकी मन्दोदरी आजकल दोनों मकानकी मालकिन है। वह औरत मोटी हो गयी है। सेमिजके ऊपर सफेद मारकोनका थान पहन लेने पर संभ्रान्तवंशीय देवीकी तरह दीखती है।

दुर्भिक्षने शहरमें लड़कियोंकी मांग बढ़ादी एवं मुफस्लमें लड़कियाँ सुलभ और सस्ती होनेकी वजह कालाचन्द इधर उधर दौरा करने लगा। गाँवमें पहुँच कर उसने शैलको पसन्द किया। शैल अवश्य तब ठठरियोंका ढाँचा मात्र थी, लेकिन ऐसी स्थितिमें नहीं पड़नेपर क्या कभी ऐसे घरोंकी लड़कियाँ हाथ आती हैं? फिर भूखे रहनेके कारण हड्डियां उभड़ आई हैं, कुछ दिन आरामसे खाने पीनेसे हड्डियाँ अवश्य ढँक जायेंगी। शैलको उसने आजके पूर्व भी देखा था। काम चलाउ रूप होनेके कारण ही कालाचन्दने चेष्टा नहीं की। कुछ भी हो प्रतिसन्ध्या-शृङ्गार कर देनेसे ही काम चल जायेगा। प्रथम कुछ दिनोंके लिये कष्ट उठा लेनेपर शैल फिर तो आप ही सब कुछ समझ जायेगी—आँखें मटकाना तथा गुड़ियोंकी तरह सजनेका ढंग।

प्रायः कीर्तन गानेवालोंके दलके मोहन के शब्दोंमें, करुण स्वर में काला चंद कहता—'अहा चच्चच्! आपको बड़ा कष्ट सहना पड़ रहा है चक्रवर्ती जी।'

केशब स्मित निस्तेज आंखों से घूरता रहता। दर्दके कारण उसकी आंखों में आंसू भर आयेंगे ऐसी उम्मीद कालाचन्द ने नहीं की थी। पर आंखोंमें आंसू छल छला आये। यह देखकर वह आश्चर्य और क्षुब्ध हो उठा। अर्थात् यह अभिज्ञता उसकी नयी नहीं है। जाने क्या हो गया है देशमें, सभी कुछ स्तब्ध हो गया है। सहानुभूति की लहरें प्रतिउत्तर भी नहीं देतीं। पहले संवेदनासे यही केशव बालबच्चोंके लिये रोरोकर आंसू को नदी बहा देता आज आंखें रगड़ता, नाक झाड़ता, दुर्भाग्यका वर्णन करता, व्याकुल आग्रहसे चेष्टा करता सोई संवेदनाको जाग्रत करने का-आज यह सब कुछ जैसे उसने चूल्हे में डाल दिया हो।

शहर गुलजार होते देख कालाचन्द बहुत से मुहल्लोंमें चक्कर लगा चुका है—बहुतसे उजड़े मुहल्ले उसने देखे हैं। पर मुहल्लोंमें बैठकर दिन प्रतिदिन उजाड़ होते उसने नहीं देखा। स्वयं चोट उसे नहीं लगी, तब कैसे वह केशवके निर्विकार मन का भाव ताड़ सके।

कालाचन्द कुछ चावल, दाल मछलियां और सब्जी ले आया-एक सांझ के लिये ही। लेकिन ये लोग अवश्य जिससे दो तीन सांझ काट देगे। वह तो केवल स्वाद लेने तक ही सीमित रहेगा पेट की अग्निमें घी के छींटेसे कालाचन्द तो उनकी लालच बढ़ादेना चाह रहा है। शैल के लिये वह एक जोड़ा साड़ी भी ले आया है। पर वह साड़ी पहनकर उसके सामने आयी शैल की मां। शैल की सेमिज फट चुकी है। फटे कपड़े पहनने पर भी उसकी लज्जा ढंकी रहती है।

कालाचन्द बहुत कुछ कहता है। मौका पाकर असली बात भी कहता है ।

'शैल को ले जाओगे? इलाज़ कराओगे?'

'जी हाँ' बहुत कष्ट होता है। उसे कष्ट में देख कर।'

कालाचाँद के नारी आश्रमिक व्यवसाय के सम्पर्क की कानाफूंसी से केशव भी अवगत था वह दबी आवाज में कहता— 'अपने मकान में रखोगे? उसे अपने घर में रखोगे तुम?

'अरे घर में नहीं तो और कहाँ रखूँगा चक्रवर्ती जी!'

केशव ने राजी होते हुए कहा—'जरा सोच समझ देखूं।'

'कालाचन्द ने खुश होकर कहा—'मैं बुधबार को आऊँगा। जरा रात गयेही आना ठीक होगा। कौन क्या, कैसा सोचे कहा तो नहीं जा सकता आप तो कह सकते हैं कि शैल मामा के घर गयी हैं।'

शैल दीख पड़ रही थी—इतनी दुबली पतली कि जरा कुबड़ी हो गयी है। हृदयके गहन अन्धकार में शैशवका भय करवटें बदलता है। कालाचन्द सिहर उठता है। सारे देश में बहुत सस्ता और सहज हो गया है मनुष्य का मरना!

कोई चारा नहीं, फिर भी सोचना पड़ता है। सोचने की ताकत नहीं होते हुए भी सोचना पड़ता है। पेट का दर्द मरोड़ के साथ कुहासा के गुम्बज की तरह एक ओर से उठ कर दिमाग को घेरे है, क्या करना चाहिए? इसका जवाब कहाँ, कौन जानता है! इसकी चिन्ता करते ही केशव का सारा शरीर रोमांचित हो उठता है। इस गाँव का निवासी राखाल की बहन और दीनेश की बेटी इसी तरह बिकी थी।

कालाचन्द के हाथ नहीं, दूसरे दो आदमियों के हाथ। फिर भी तो अन्त तक राखाल बच न सका—घर में मर कर, सड़ कर चारो तरफ दुर्गन्ध फैला चुका है। दीनेश भी अपने गिरते पड़ते परिवार को लेकर जाने कहां पड़ाव डाले है, कोई पता ही नहीं।

इसके अलावा वे ब्राह्मण तो थे नहीं। केशव की श्रेणी के भी नहीं थे। शूद्र जाति के साधारण गृहस्थ थे। उन लोगों ने जो कुछ किया क्या केशव का वैसा करना उचित है? केशव का हृदय कांप उठा। उसके मृत शरीर की नाड़ी सचल हो उठी। ताले लगे कानों में शख ध्वनि मिश्रित संस्कृत के श्लोक गूंजते, खुजली से सड़े शरीर के चमड़े पर स्नान और तसर का स्पर्श अनुभव वह करता, सड़ी लाश की स्मृति भ्रष्ट नाक में फूल और चन्दन का गन्ध पाता। बन्द आँखों के आगे उमड़ता घुमड़ता आता, विवाह मण्डप, यज्ञाग्नि, दान-सामग्री, चोली पहने शैल, कतार के कतार आदमियों के सामने पड़े कतार से फल-पत्ते। उसके हृदय में जैसे गूज रहा हो कि वह शैल का बाप है।

कच्चू के पत्ते के साथ माड़भात खाते वक्त केशव कतार के कतार आदमियों के सामने पड़े केले के पत्ते अलग भट्टी पर चढ़ी बड़ी बड़ी पतीली और कढ़ाई में भरे हुए व्यञ्जन के गन्ध से जैसे निश्वाँस में हमेशा की तरह ऊब-डूब हो जाता—कौन किस का बाप है?

शैल की माँ सिसकती है, रोती नहीं - कलपती और गुनगुनाहट भरे गीत के स्वर में सिसकती। सुनने पर जान पड़ता है जैसे घर में भौंरे गूँज रहे हैं। शैल की श्रवण शक्ति के तेज होने के कारण वह बीच बीच में कुछ सुनती है—तू मरती भी नहीं। सभी मरते हैं, तुझे

मौत नहीं। भाई को खा सकी, बहन को चबा गयी, अपने आप को नहीं खा सकी मुंहजरी! मर तूही मर। कलकत्ता जाने के पहले ही मर जा।

शैलका स्वभिमान मर चुका है। उसके हृदय में दुख-दर्द, मान अभिमान कुछ नहीं जागता। खानेकी चिन्ताभी उसे नहीं रहती। कालाचन्द के साथ जहां भी हो जाकर दोनों वक्त पेट भर कर भोजन करने की बात सोच कर वह सिर्फ रोमांचित हो उठती है। उसका नारी-शरीर का सहज धर्म रक्त-मांस का आश्रय त्याग कर सिरे पर जा पहुंचा है। पंजर खुजलाने से सुख नहीं मिलता; रक्त निकलने पर दर्द नहीं होता। फूले पेट वाले अपने छोटे भाई के कच्चे अमरूद चबाने तक से वह रोमांचित हो उठती है।

बुधवार सुबह को खूब धूम निकल कर, दोपहर को आकास मेघाच्छन्न हो गया, और शाम को बादल फट गया। शाम को डाक्टर के नाती के अन्न-प्राशन के उपलक्ष में केशव को परिवार सहित निमंत्रण था। कुंज, सहनाई वाला उसके साथी और बच्चे गांव के व्याह और अन्न-प्राशन जैसे अवसर पर मुट्ठीभरभात पर ही सहनाई बजाते आये हैं। उसकी अनुपस्थितिमें सदय को बाहर से सहनाई वाले को बुलाना पड़ा है। सदय डाक्टर के यहां का निमत्रण पूरा कर किसी तरह केशव घर लौट कर सपरिवार के लिये बिछी चटाई पर लुढ़क गया। पेट भर कर खाने पर आदमी दम अंटक कर मरने की हालत में पहुच जाता है, यह उसे अपने जीवन में आज पहली बार ज्ञात हुआ। शाम तक वे इसी तरह अर्द्ध चेतन अवस्था में पड़े रहे जैसे ज्ञान खोकर मतवाले सो रहे हों। रास्ते में एक मर्तबा और घर में कई मर्तबा कै करने के बजाय नींद ही अधिक स्वाभाविक हुई। केशव के पेट में दर्द शुरु होने

परवहींपास बैठकर शैल उसके पेट पर सूखी हथेली सहलाने लगी' घर में तेल नहीं था जो ।

पेट का दर्द कम होते होते रात हो गयी, अब केशव का मानसिक संस्कार दर्दसे तड़फड़ा रहा है। कालाचन्द आया बहुत बाद, रात तब अधिक हो चली थी। मुहल्ले से कुछ दूर गाड़ी छोड़कर वह एक आदमी को साथ लेकर आया है। सिर्फ यही मुहल्ला नहीं सारा गांव नींद में झूम रहा है। केवल केशव को लग रहा है जैसे बहुत दूर सदय डाक्टर के मकान पर अब भी अस्पष्ट स्वर में सहनाई बज रही है ।

'केशव रो कर बोला—' ओ, भइया कालाचन्द !'

'जी हां ?'

'इस तरह अपनी लाड़ली को कैसे जाने दें। ब्याह के योग्य मेरी लाड़ली !'

'यही तो बुराई है आपलोंगो में । मुझे विश्वास नहीं ?' कहिये तब क्या करूं ? सामान गाड़ी पर है । तीन बोरे चावल—'

केशव चुप रहा। टर्च की रोशनी में कालाचन्द ने एक बार उसका मुंह देख लिया—आँखे आग में झुलसी बनैले पशुओ की आंखों की तरह केशव की आंसु भरी आंखें जल रही हैं, पलकें गिरती नहीं ।

कुछ देर इन्तजार कर कालाचन्द ने कहा—'जितनी जल्दी हो सके उतना ही अच्छा है। यह कपड़े लत्ते ले आया हूं, शैल को पहनने के लिये कह दें। सामान लाने आदमी को भेजता हूं चक्रवर्ती जी ?'

केशव अस्फुट स्वर में हां या ना कर गया स्पष्ट समझ में नहीं आता शैल की मां में सिसकी लगी।

कालाचन्द ने साथ के आदमीको हुक्म दिया,—' सोमान सब ले आ ड्राइवर को गाड़ी में ही रहने को कह देना।'

कालाचन्द टर्च जलाये रहा। अंधेरे में उसका शरीर सिहर रहा था टर्च के प्रकाश से घर की नाटकीय स्तब्धता में विकार की सृष्टि हुई। केशव झुककर बैठा है, उसके हाथ में शैल के लिये लायी गयी रंगीन साड़ी, साया और ब्लाउज है। ठीक उसके पीछे खड़ी है शैल।

"तो भइया, एक अनुमति है?" केशव का गला बहुत कुछ शान्त मालूम पड़ा।

'कहिये।'

'शैल को तुम ब्याह कर ले जाओ।'

'ब्याह? आप पागल हो गये हैं क्या?'

शैल को कपड़े देकर केशव ने कालाचन्द का हाथ पकड़ लिया। आरजू-मिन्नत के साथ बोला—"यह ब्याह वह ब्याह नहीं, जो दस के सामने पुरोहित कराते हैं, साक्षी सबूत रहता है। वर की जिम्मेदारी कानून-सिद्ध किया जाता है। यह वह ब्याह नहीं। यह ब्याह तो केशव के मन की शान्ति के लिये है भइया।'

"मैं सिर्फ नारायण को साक्षी देकर शैल को तुम्हें सौंप दूंगा। इसके बाद तुम्हारी जो मर्जी करो, वह तुम्हारा धर्म है। हमारा धर्म रखने दो। जरा वेग जोग कर लेने दो।'

दो जवान व्यक्ति सिर पर शैल की कीमत लेकर हाजिर हुए। गांव उजाड़ हो गया है फिर भी आधी रात को गांव की एक लड़की को ले जाने के लिये कई व्यक्तियों को साथ न लाकर बेवकूफी करना कालाचन्द नहीं

जानता। कोई अकेला पाकर उसे काट कर कहीं फेंक दे तो।

केशव के पागलपन से विरक्त होकर उसने कहा—'जो कुछ करना है जल्दी करिये।'

कालाचन्द से दियासलाई लेकर केशव ने घर के एक कोने में शिलारूपी भगवान के आसन के पास रखे दीया को जलाया। घर के बाहर छिटकी चांदनी में, शैल ने कपड़े बदल डाले। नया रङ्गीन साया, ब्लाउज और साड़ी पहन कर वह आई। दीया में तेल थोड़ा था। केशव अपने भगवान को साक्षी कर कन्यादान के समस्त क्षणों में शैल को बारबार ख्याल आने लगा कि दीया के तेल से बाप का पेट मालिश करती तो दर्द जल्दी से जल्दी कम हो जाता। अब तक उसका बाप कष्ट नहीं पाता—इस पेटके दर्द से।

बुझते हुये दीया के टिमटिमाते प्रकाश में कालाचन्द के हाथ में शैल का हाथ दे शैल का केशव भिनभिनातेस्वर में मन्त्र पढ़ने लगा। कालाचन्द ऊब कर तकाजा के स्वर में बार-बार कहने लगा—'जल्दी कीजिये।' घर में जो देवता हैं वह नहीं जानता। देवी-देवता के साथ मज़ाक उसे अच्छा नहीं लगता। मन अभिभूत होता जा रहा है। गृहस्थ के शान्त, पवित्र अन्तः पुर में चौकी पर सूखे हुये फूल-पत्तों से अधिष्ठित देवता, सद्-ब्राह्मण का मन्त्रोच्चारण सुनसान परदेश की अली-गली, पथ-प्रान्त की पूंजीभूत आधी रात का भय उत्पन्न करने वाला रहस्य उस पर काबू करना चाहता है। मन ही मन अपने आप को गालियां दे देकर वह सोचने लगा—बूढ़े के इस पागलपन पर राजी न होना ही उसके लिये उचित था।

दीया के बुझते ही कालाचन्द ने अपना हाथ खींच लिया। उसके हाथ में शैल की हथेली पड़ी-पड़ी पसीने से भींग गयी थी।

कालाचन्द का शरीर भी पसीने से तरबतर हो गया था। रूमाल से मुंह पोंछ कर शैल का हाथ जोर से पकड़ खींचता घसीटता वह बाहर निकल गया। स्वयं भी विदा न ली, शैल को भी न लेने दिया। दुकानदार से खरीदार या दुकानदार कोई भी विदा व्यवहार सम्पन्न नहीं करता। कालाचन्द को कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। शैल भी स्तम्भित हो गयी थी।

शिवली जवा के वृक्ष के बीच से मकान के सामने वाली कच्ची सड़क पार करते ही शैल के मन से स्तम्भित भाव दूर हो गया। तभी वहीं पर सर्व प्रथम अपना हाथ झटके से खींचते हुए उसने कहा—'मैं नहीं जाऊंगी।'

और कई मर्त्तबा हाथ खींच कर नहीं जाने के कह चुकने के बाद वह जोर से रोने का उपक्रम करने लगी कालाचन्द ने उसी की साड़ी का आँचल उसके मुंह में ठूंस दिया और उसे दोनों बाहुंओं में. जकड़ गोद में उठा लिया। उस समय क्षण भर के लिये उसके दुबले-पतले शरीर में एक अजीब तरह की ताकत आ गयी। बारबार, कई बार रोमांचित होने के साथ-साथ ही पैर फेंककर वह धनुषाकार हो गयी। मुंह में ठुंसे आँचल के निकल जाने पर भी वह दाँतों पर दांत चढ़ा कर 'गों गों' करने लगी। इसके बाद अचानक वह शिथिल और निस्पंद हो गयी।

× × ×

सब कुछ सुनकर कालाचन्द की मन्दोदरी गुस्से से बोली—'क्या जरूरत थी दइया, इतने हङ्गामा की? और लड़की क्या पृथ्वी पर नहीं थी।'

'कैसा एक नशा-सा हो गया था।'

'नशा हो गया, दइया रे दइया ! इस काली कलूटी हड्डियोंका ढांचा देख कर नशा सवार हो गया !'

किन्तु मन्दोदरी का सदेह नहीं मिटा। पुरुष की पसन्दगी को वह एक युग से नमस्कार करती है—उटपटांग है यह पुरुष की पसन्दगी। शैल के लिये कालाचन्द का सिर दर्द, आदर यत्न और खास व्यवस्था के बढ़ाव से सदेह दिनो दिन और भी घना होने लगा। मारकीन की साड़ी और सेमीज पहनने वाली भले घर की देवी की तरह मन्दोदरी की आंखों में दीख पड़ा कुटिल और कालापन।

शैल को देखने डाक्टर आता। उसके लिये हल्का और पुष्टिकर पथ्य आता। दूसरी जवान लड़कियों को उससे मिलने जुलने नहीं दिया जाता। कालाचन्द उसके साथ अधिक समय बिताता है।

एक दिन यह सारा कुछ बहुत स्पष्ट हो गया।

शैल का रूप लावण्य बहुत कुछ लौट आया है कालाचन्द सोचता है उसे अपने घर ले जाऊँगा।

'क्यों ?'

'मन कैसा-कैसा कर रहा है। वैसे वह मेरी व्याहता है। देबता के सामने उसको पिता ने मन्त्र पढ़कर उसे मेरे साथ किया है। मैं कहता हूं ले जाऊँगा घर के एक कोने में दाई-नौकरानी की तरह पड़ी रहेगी।'

दोनों में प्रचण्ड कलह हो गया—वास्तविक, अश्लील, कुत्सित कलह। कालाचन्द नाराज होकर शराब का एक अद्धा हाथ में ले शैल के कमरे में जा घुसा। अन्दर से सीकल बन्द कर दिया उसने।

दूसरे दिन दोपहर को वह अपने मकान चला गया। स्त्री के साथ बचे

हुए बोझिल दिन बिता कर संध्या के बाद गाड़ी ले शैल को लेने आया। मकान में प्रवेश करते ही मन्दोदरी कालाचन्दको घसीट कर अपने कमरे में ले गयी—"शैल के घर में आदमी है।'

कालाचन्द के सिर में आग लहक उठी। ऐसा जान पड़ा कि मन्दोदरी का वह खून कर बैठे।

'आदमी है, हमारी व्याहता पत्नी के घर में—'

मन्दोदरी ने गुम सुम हो एक नोट का पुलिन्दा निकाल कालाचन्द के सामने रख दिया। जरा नाक भौं सिकोड़ कर नोटों को हाथ में ले कालाचन्द सावधानी के साथ गिनने लगा। गिन चुकने पर उसे लगा जैसे वह मन्त्र बल सेठंढा कृतार्थ, — कृतज्ञ हो उठा है।

'वह कौन है?'

'वही गजेन। चावल बेच कर पागल हो उठा है।

नोटों के हथेली में उलट-फेर के साथ कालाचन्द की आंखों तथा मुँह पर थिरकता निःशब्द विस्मय और प्रश्न के भाव का अनुमान लगाकर मंदोदरी ने पुनः कहा—'नशा सवार हो गया है जो। रूपये क्या है, मिट्टी है, गाँव को कुमारी खोजता था।'

हड्डी

श्रीनारायण गंगोपाध्याय

लोहे के दरवाजे के उस पार दो काल विकराल कुत्ते, जिस दृष्टि से मुझे घूर रहे थे उसे बन्धुत्व नहीं कहा जा सकता। एक कदम आगे बढ़, तीन कदम पीछे हो लिया।

दरवाजे के बाहर अनिश्चित-सा क्षणेक खड़ा रहा—लौट जाऊं? श्यामबाजार से इतनी दूर पैसा खर्च कर आया और सिर्फ दो कुत्तों का दर्शन कर लौट जाऊं?

रायबहादुर एच०एल० चटर्जी 'इन्' (अन्दर) तो हैं, मगर बुलाऊं कैसे? दरवान का क्वार्टर भी बन्द है। उस ओर बगीचे के किनारे जहां सुन्दर ग्राण्डीफ्लोरा प्रस्फुटित है, एक माली हाथ में झंझरी लेकर जाने क्या कर रहा था। एक मर्तबा भी उसकी निगाह में मैं पड़ा या नहीं, यह मैं नहीं जानता—नहीं पड़ना ही स्वाभाविक था।

पर क्या करूं, नौकरी की उम्मीद! बहुत मुश्किल से एक परिचय पत्र मिला था—'पितृ-बन्धु' एक ऐसा शब्द भी सुना था। रायबहादुर की कलम की हल्की रगड़ से ही नौकरी मिल सकती है, हो सकता है, मुझे देख कर किसी को कौतुहल हो, उसी शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा करूं। दरवाजे के सामने टहलने लगा।

विस्तृत रासविहारी एवेन्यू—मोटर, ट्राम, मनुष्यों की भीड़-भाड़—सर के ऊपर एरोप्लेन के पंखे का शब्द...जापानी दुश्मन के आक्रमण की आशंका से गूंज रहा है—घर्र, र्र-र्र—

पीछे एक रोषपूर्ण गर्जना। भयभीत हो मुड़कर देखा, वह विकराल-काल कुत्ता दरवाजे के करीब आ गया है। लोहे के मोटे छड़ों के भीतर से अपना भोथर थुथना बाहर किये दे रहा है। दोनों आँखों में सुनहली अग्नि लपलपा रही है, चमक रही है दो स्वर्ण मुद्रा की भांति। कर्कश हिंसक दाँत

निपोर कर वह फिर गुर्रा उठा—गुर्र-गुर्र !

अच्छे लक्षण नहीं हैं ये। संकटमूपंच हस्तेन-ऐसा मालूम होता है, शास्त्रकार कुत्ते की महिमा से उस समय तक परिचित नहीं हुए थे। दरवाजे के सामने से दो कदम और पीछे हो लिया। आशा छोड़ नहीं पा रहा हूं—उम्मीदवारों की आशा अनन्त है।

कुछ ही दूर पर है मनोहर पुकुर पार्क। नाम ही मनोहर है, वहां का दृश्य मनोहर नहीं। वहां भूखमरों की कालनी बसी है। नगर में निर्मल स्वच्छ जल-स्रोत की ज्वार की वजह एक दुर्गन्ध आ रही है। वे चीत्कार कर रहे हैं, कलह कर रहे हैं, परस्पर एक दूसरे के सिर से जुएं निकाल रहे हैं, जानवरों की तरह झुककर काली जीभ से चाट रहे हैं—नाली का गन्दा जल,अपदार्थ। सहानुभूति नहीं होती, वेदना भी नहीं केवल एक अज्ञात आशंका से शरीर रोमांचित हो उठता है। समूचे शहर में फैली यह भूख की ज्वाला कब शांत होगी, कौन जानें ! एक मुट्ठी चावल और बाजरा ही क्या इसके लिये यथेष्ट है ? और अधिक, इस और से भी अधिक—इतनाही नहीं रासविहारी एवेन्यूके चित्रवत् बँगलोंसे भी अधिक।

हवा में गन्ध की एक तरङ्ग आयी। नहीं, भूखमरों की गन्दगी की गन्ध नहीं, ग्राण्डीफ्लोरा की कड़ी और मधुर सुगन्ध की गन्ध। संगमरमर की चौड़ी सड़क, काले मारबल जड़ित सीढ़ियां, रंगीन शीशे मढ़े खिड़कियों पर रेशमी पर्दे, चीनी मिट्टी के टबों में अर्किड !

'किसे चाहते हैं आप ?' मीठे-मधुर कण्ठ से आवाज आयी-मैगनोलिया के मधुर सुगन्ध से मिलती-जुलती।

मुड़ कर देखा दरवाजे के उस पार जाने कहां से एक षोड़शी आ खड़ी हुई है-स्वस्थ समुज्वल, दीर्घकाय, एक गोरी नवयुवती। शरीर पर ट्राउजर साथ में छोटी साईकिल। पुनः प्रश्न हुआ—'क्या चाहिये ? —अरे, चुप ?'

कुत्ता भौंकना बन्द कर शान्त हो गया। नवयुवती की आंखों में आंखें डाल—बहुत कुछ पा लेने की आकांक्षा से लुभाया-सा पूंछ हिलाने लगा।

सूखे गले से दबी आवाज में मैंने कहा—'रायबहादुर घर में है ?'

'कौन पिता जी ? हां,हैं क्यों नहीं ?'

'उनसे मिलना सम्भव हो सकेगा !'

'आइये।'

लोहे का दरवाजा खुल गया। संगमरमर के रास्ते पर अब कदम पड़ा उज्वल स्वच्छ पथ था मेरे तल्लीदार जूतेसे अधिक साफ सुथरा।

हरे रंगका पर्दा हटा, भीतरके कार्पेट पर पैर रखा। नीले रंगके प्रकाश से कमरा आच्छादित है। एक आराम कुर्सी पर पैर उठाये, एक भले आदमी अध्ययन में लीन थे। मुझे कमरे में दाखिल होते देख उठ बैठे।

नमस्कार के आदान-प्रदान के बाद उस भले आदमी ने कहा—'बैठिये बात क्या है ?'

धड़कते हृदय से परिचय-पत्र उनकी ओर बढ़ाने के बाद आसन ग्रहण किया।

रायबहादुर ने लिफाफा खोल चिट्ठी में मन लगा दिया और मैं रह रह कर कातर नतोन्मुख दृष्टि उनकी ओर उठा कर देखने लगा। गोल मटोल मुखड़ा, चिट्टे गोरे चमड़े से मानों रक्त बाहर चू रहा हो। ब्लड-प्रेशर शब्द का डाक्टरी शब्दार्थ नहीं जानता लेकिन अगर इस शब्द का अर्थ भारतीय भाषा के अनुसार रक्ताधिक्य है, तो जरूर वे ब्लड-प्रेशर से पीड़ित थे।

चुपचाप कई मुहूर्त कटे। कहीं एक घड़ी टिक टिक कर रही है। हवा आ रही है रायबहादुर के बगीचे की ओर से। बायें हाथ की अनामिका में चकमक जो कर रहा है, वह क्या है ? अवश्य, हीरा होगा।

पत्र पढ़ चुकने पर रायबहादुर मेरे चेहरे की ओर देखने लगे। आंखों की दृष्टि शान्त और उदार—चेतनाहीन हृदय से जैसे एक निश्वास,सिर उठा कर, जबरन निकली —हो सकता है नौकरी मिल जाय।

'प्रमथ के बेटे हो तुम ? तब तो तुम हमारे अपने ठहरे। तुम्हारे पिता और मैं फरीदपुर में एक ही साथ पढ़ता था। प्रमथ, ओह ! ही वाज

ए नाईस ब्वाय।'

निरुत्तर रहने के अलावे विनम्रता से मैं सिर झुकाये रहा और क्या किया जाय। पिता की प्रशंसा में विनीत होना ही उचित है भक्त संतानों को।

'तुम्हें नोकरी नहीं मिलती, लड़ाई के दिनों में! एम० ए० पास कर क्लर्की की उम्मीद रखते हो। बी मैन, यंगफ्रेण्ड' एडवेंचर की ओर कदम बढ़ाओ। नौकरी करो एक्टिव सर्विस में, जुट जाओ 'नेभी' में।'

मैंने कहा—'तरह-तरह की असुविधाएं हैं। परिवार की देख-भाल करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त डावांडोल स्थिति के बीच.........'

'डावांडोल'?—तीखी हो उठी रायबहादुर की आंखें—'जिन्दगी ही तो डावांडोल है लड़के। मैंने भी अपने को छोड़ दिया था इस डावांडोल के बीच। सिंगापुर में दस वर्ष काट दिया, हवा में उड़ता पहुंच गया मनिला, टाहिटी-फिलिपाइन, मिकाडो के देश जापान में। पृथ्वी को आंखों से नहीं देखने पर जीने का कोई अर्थ नहीं।'

'सो ठीक है।'—मैं कठिनाई से मुस्कुराया। रायबहादुर की बातें अच्छी और मूल्यवान हैं—जीवन में एडवेंचर नहीं, तभी तो भारतीयों की सारी प्रतिभा नष्ट हो गयी। पर ज्ञान की बातें सिर्फ सुनकर क्या ज्ञानी हो सकता है कोई? युद्ध से डरता हूँ मैं, खतरे की घण्टी की घबराहट से मेरा हृदय कांपने लगता है। 'यू बोट' के विघ्न से फेनिल समुद्र की निरुद्देश्य-यात्रा मुझे कवि-कल्पना की तरह मुग्ध नहीं करती। फिर बाप की दौलत के भरोसे प्रशांत महासागर के स्वप्न राज्य का भ्रमण करना और उड़ाकों की तरफ दूरबीन के भीतर रक्तिम आंखें गड़ाये—'एण्टी एयरक्राफ्ट गन लेकर प्रतीक्षा करना—मुझे सन्देह है कि इन दोनों के बीच बहुत कुछ असंगत व्यवधान है।

पाइप सुलगा लेने के बाद रायबहादुर बोले—'कितनी जगहों का भ्रमण किया मैंने। हवैईयनों का वह हूलाडान्स, स्टिवेन्सन व्यालेटाइन का मूंगों के द्वीप का देश, फिलिपाईन की जादू-विद्या—विचित्र कलेक्शन है मेरा, देखोगे?'

कलेक्शन देखने की अवस्था में मन नहीं है। २५रुपये का एक प्राइवेट ट्यूशन है, अभी उसी के लिये जाना होगा। पर पिता के मित्र रायबहादुर को नाराज नहीं किया जा सकता, उनकी कलम जरा चल पड़े तो नौकरी मिल सकती है।

उठे, एक सफेद वल्ब जलाया उन्होंने। इसके बाद कमरे के एक कोने में अवस्थित लोहे की एक आलमारी खोली। उसके दराज से निकला काले वेलवेट का एक सन्दूक, उसे लाकर रखा मेरे सामने और फिर ढक्कन खोलकर उन्होंने कहा—'देखते हो ?'

देखा,लेकिन यह कैसा कलेक्शन ! कितने ही छोटे बड़े हड्डियोंके टुकड़े, प्रत्येक के साथ नम्बर दिया हुआ एक लेबल लटक रहा है। आश्चर्य चकित होकर मैंने कहा—'ये हड्डियां है क्या ?'

'हाँ, हड्डियां हैं'—मेरे सामने बैठ गये रायबहादुर—'पर साधारण हड्डियां नहीं। इनका प्रत्येक का एक विस्तृत परिचय है, अमानुषिक सभी गुण हैं। सारे पैसिफिकका चक्कर लगाकर मैंने इनका संग्रह किया है—पर, 'वन् मिनट प्लीज ! —सुशी मादर !'

सुशी कमरे में दाखिल हुई-वही नवयुवती।

'पुकारा है पापा ?'

'हमें चाय चाहिये '

'अभी कह देती हूं' —नाच की भंगिमा में सारे शरीर को लचकाती सुशी कमरे से क्रमशः लोप हो गयी ।

रायबहादुर ने फिर मेरी ओर दृष्टिपात किया ।. इसके बाद-मूल्यवान अप्राप्यहीरे की तरह यत्न पूर्वक बक्ससे हड्डी का एक टुकड़ा निकाल लाये।

'बता सकते हो, किसकी हड्डी है यह ?'

'जरूर किसी भयानक जन्तु की है' डरता डरता बोला–'गुरिल्ला की ?'

'नोनसेन्स—?' रायबहादुर ने एक जबरदस्त धमकी दी मुझे—'प्रशांत महासागर में गुरिल्ला रहते हैं ? सुना है कभी ? यह है रेडेशियन के स्वाजातीय किसी आदि मानव की हड्डी ।'

'रेडेशियन ?'

'हां रेडेशियन' रायबहादुर अप्रसन्न हो उठे-'रेडेशियन नाम नहीं जानते ? आधा मनुष्य आधा गुरिल्ला। सिर्फ एक सौ बर्ष पूर्व पृथ्वी पर अस्तित्व था उनका।'

बेवकूफ का तरह मैंने कहा-'जी हां सुना क्यों नहीं है।' चेतनाहीन मन को जैसे मेरे यह शब्द खुशामदी से लगे। मगर नौकरी का उम्मीदवार होने पर तो खुशामदी होना आवश्यक है।

'उसी रेडेशियन क्लास के किसी जीव की हड्डी है। मनुष्य की भी कह सकते हो। कहां मिली, जानते हो ? मिण्डनाओ द्वीप में काटाबटु नामक एक स्थान है। उसके आस पास के गांव के एक मुखिया से खरीदा था मैंने। कितना मूल्य दिया होगा बता सकते हो ?'

धमकी पा जाने पर साहस नहीं हुआ। मगर कुछ कहना था, कहा —'अधिक से अधिक मूल्य होगा!'

'जरूर, पाँच हजार रुपया।'

'पो-आं-च हजार रुपया।'

रायबहादुरके हाथ की उस वस्तु की ओर मेरी आंखें गड़ी रहीं। तीन इञ्च लम्बी, आकृति चपटी, छुरी के फल से मिलता-जुलता। विवर्ण हो जाने के बाद हरिद्राभ रंग हैं, रायबहादुर के विकट कुत्ते के गन्दे और पीले दांतों की तरह।

'बहुत अधिक मूल्य जान पड़ रहा है ? बिल्कुल नहीं, इसका इतिहास सुनोगे तुम ?—'

दूर मचे कोलाहल में रायबहादुर के वाक्य का शेषांश लोप हो गया। बाहर ट्राम की घरघराहट में, घड़ी की टिक टिक छन्द-बद्ध स्वर-लहरी इन सभी से दूर का वह कोलाहल मेरे कानों को चोट पहुंचाने लगा। पर कोलाहल अपरिचित नहीं, किसी अज्ञात कारणसे भूखी जनता उमड़ पड़ी है।

रायबहादुर का चेहरा अप्रसन्नता से सिकुड़ गया-'पार्क के उन डस्टीच्यु-

ट्रस के कारण रात को नींद तक नहीं आती। शायद कुछ खाने-पीने को मिला है इसीसे इतनी चिल्लाचिल्ली हो रही है। खाना नहीं मिलने पर तो चिल्लाते ही हैं, मिलने पर भी।'

हरे रंग का पर्दा पुनः हटा। एक ट्रे हाथ में लिये बेयरा कमरे में आया। चाय और नाश्ता—पिता की मित्रता का रायबहादुर अपने हृदय में स्थान दिये हैं, तब तो नौकरी मिलकर ही रहेगी।

रायबहादुर ने कहा-'लो।'

बिना वाक्य-व्ययके ही मैंने अपने सामने प्लेट घसीट लिया। भूख भी बहुत जोर की लगी थी। दिन को ग्यारह बजे मेस से खाकर निकला था और साढ़े पांच बज रहे हैं अब। इस बीच एक कप चाय, एक सिगरेट तक नहीं।

और कुछ ही दूर पर भुखमरों की चीत्कार। जिस तरह कुत्ते झगड़ते हैं। मनश्चक्षु से देख रहा हूं। वे गोग्रास निगल रहे हैं, खिचड़ी का कौर गले में अटक जाने पर आंखें मानों ठेल-धकेल कर निकली आ रही हों, इस पर भी और पा लेने के लिये अवरुद्ध स्वर में आर्तनाद कर रहे हैं और हम यहां चाय पी रहे हैं, बड़े मौज संयत और भद्रभाव से। मुंह पाई भर खोलकर दांत के कोने में केक काट रहे हैं—जैसे उद्देश्य खाने का नहीं हो, सिर्फ दांतों के विलास के लिये दूबकी हड्डो चबाने का हो।

चाय के कप पर होठ रख ऐसे चूम रहा हूं जिससे आवाज तक नहीं होती—होठ के आगे, अलग से ही चुम्बन की तरह भाप केवल लग रही है। 'गप्प-गप्प' कर निगलना 'चप-चप 'शब्द करने पर जीवन का सारा नैतिक आनन्द विस्वाद ही जाता है।

होठों से चाय की प्याली हटा, रायबहादुर ने कहा—'हां, क्या कह रहा था? यह हड्डी! बहुत विचित्रता के साथ संग्रह किया है इसे वहां के सरदार इसे मुकुटमें जड़ते हैं क्योंकि जिसके सिर पर यह हड्डी रहेगी वह युद्ध में अजेय रहेगा। दुश्मन के हजार अस्त्राघात से भी उसका कोई नुकसान

नहीं हो सकता। उन लोगों के किसी जादूगर ने इसे मन्त्र-मुग्ध कर दिया है। बहुत कष्ट से मैं इसको पा सका हूँ, Curio के अपूर्व नमूना के हिसाब से। 'वेल यंगमैन' जादू पर विश्वास है, तुम्हारा ?

सन्ध्या घनी होती आ रही है। मनोहर पोखर पार्क से अविच्छिन्न चीत्कार आ रहा है। जादू पर विश्वास करता क्यों नहीं ? शस्य श्यामला लक्ष्मी का भण्डार बङ्गाल, हरिवर्मा देव और शशाङ्क जैसे नरेन्द्रों की तलवार से रक्षित बङ्गाल, किसके मन्त्र-बल से उसी बङ्गाल में आया प्रेतों का एक दल ? फसल से भरे खेत किनके मन्त्र से निश्चिन्त हो गये, एक कण भी पड़ा नहीं रहा कहीं ? जादू पर विश्वास न करने के सिवा और उपाय ही क्या है ?

मैंने कहा—'जी हां, ये—कितनी तरह की बातें हैं, विज्ञान से उसे···

'देयर यू आर' दो नम्बर को हड्डी उठाकर रायबहादुर बोले—'मैं भी यह कह रहा हूँ। स्टिवेन्सन को वे कहानियाँ पढ़ो नहीं ? देखते देखते साढ़े तीन हाथ का मनुष्य साढ़े तीन सौ हाथ लम्बा हो जाता है, लम्बे-लम्बे डेग फेंकता पार हो जाता है समुद्र—और जल पर पड़े नाविकों का कंकाल उसके पैर की चाप से चूर हो जाता—तड़-तड़ कर ? टाहिटी के आकाश पर के तूफानी काले मेघ रक्त की तरह रङ्गीन हो उठते मदहोश हवा के झोंकों से, अग्नि की उल्का चमकने लगती है, आकाश से जो वृष्टि की धारा गिरती सो पानी नहीं होता है, लाल रक्त को बूंदें होती हैं। और कैसे क्या होता है जानते हो ? इसी तरह—ठीक इसी तरह इस एक हड्डी का गुण है।'

भीत, सशंकित दृष्टि से मैंने उस हड्डी की ओर देखा। किसी और समय यह सारी बातें गंजेड़ियों की मनगढ़न्त कहानी प्रतीत होतीं, किन्तु इस समय का समस्त वातावरण जैसे इसी कहानी के लिये प्रस्तुत है। घर

के भीतर सफेद बल्ब जल रहा है। ग्राण्डीफ्लोरा और रायबहादुर के होठों के बीच पड़ी पाइप से तम्बाकू की कड़ी गन्ध आ रही है। हवा की वजह से खिड़कियों के नीले पर्दे प्रशान्त महासागर के नीले तरङ्ग की तरह तरङ्गित हो रहे हैं। रायबहादुर के मन में हुआ मानो अपरिचित देश का वही अद्भुत कर्मा जादूगर उनके हाथ से क्षणभर में ही हड्डी झटक लेगा।

'पूर्णग्रास सूर्य-ग्रहण के समय पूजा कर कुमारी लड़कियों की बलि देते हैं, वे। फिर उसे जलाने के बाद हड्डी जो रह जाती है उसे मिट्टी में गाड़ देते हैं। सात वर्ष बाद महासमारोह के दिन उस हाड़ को लाया जाता है, फिर फेंक दिया जाता है, समुद्र में। उस हड्डी को जो समुद्र-तल से लाता है वही होता है पक्का जादूगर। जितनी भी प्रेतात्माएं हैं सभी उसकी अनुचरी हो जाती हैं। पत्थर भी उसकी क्षमता से सोना हो जाता है और उसके आदेश से लतापत्र सांप होकर फन काढ़ सकते हैं।

मैं बैठा रहा मन्त्र मुग्ध की तरह। रायबहादुर की दोनों आँखें जल रही थीं, हाथ का हीरा जल रहा था और जल रही थी वही कुंवारी लड़की की बलि देकर पायी गयी हड्डी। नीले पर्दे भी जल रहे थे, अग्नि की तरह जल रही थीं अति तीव्रशक्ति वाली बिजलीका चिराग। समस्त घर जैसे जल रहा हो और उसी ज्वलन्त घर के बीच में फैल रही है मैगनोलिया की गन्ध, पाइप की तमाकू की गन्ध, वेलवेट के बक्स से निकल कर आने कैम्री एक दवा की गन्ध। मुझे लगा जैसे मेरे सामने एक अग्निकुण्ड धधक रहा है, उसकी लपट में जल कर भस्म होता जा रहा है मनुष्य का ताजा मांस-तमाकू के धुएं में मिलती जा रही है दग्ध मेदा और चूल की अति उग्र दुर्गन्ध जैसे मेरा दम अटकना चाह रहा हो—

'चाट्टि भरत दाउ ना—एक्टू फेन !'

मोह टूट गया क्षणभरमें। टाहिटी द्वीप में मनुष्य नहीं जले, जले हैं कलकत्ते में। भूख की लौलिहाना शिखा से। रासबिहारी एवेन्यू में विराम नहीं-ट्राफिक कार ट्राम चलती है, मोटर चल रही है, चलती है 'स्वप्न सम लोक यात्रा।' पर इन सब कुछ से छुड़ा कर वही चीत्कार आकर कानों में चोट कर रहा है। कितना अस्वाभाविक गले को आवाज, कैसा दानवीय है आर्तनाद !

मरने के पहले मनुष्य के गले का स्वर क्या इसी तरह गगनभेदी हो उठता है !

रायबहादुर ने फिर भ्रू संकुचित की विरक्त हो कर। शब्द उनके कानों में भी पड़ा है बहुत ही प्रत्यक्ष। वास्तविक है। मनुष्य की भूख बहुत नग्न, और प्रबल है। एक क्षण भूलने की शक्ति नहीं, मुंह मोड़ने का उपाय नहीं—कभी भी कहाँ टाहिटी, मनिला, होनोलूलू जादू का देश और कहाँ—

, किन्तु मुझे याद हो आये उनके दरवाजे पर अवस्थित दो कराल दर्शन कुत्ते—नये सोने के सिक्के के जैसी झक झक पिंगल आँखें नचाते वे पहरा दे रहे हैं; किसी अनाहूत, रवाहूतके लिये साध्य नहीं कि जो वह सतर्क प्रहरी को धोका दे राज्य में अनाधिकार प्रवेश कर सके—यह है जादू मन्त्र का देश। बाहर पृथ्वी पर जितनी भूख उत्ताल क्यों न हो, यहाँ के फूलों की गन्ध, रायबहादुर की अंगुलीमें जाज्वल्लमान हीरे अथवा नीले पर्दे पर वैद्यु-तिक दीपक का प्रकाश—कहीं भी उन्हें विलक्षणता नहीं मिल सकेगी।

'ये हड्डियाँ तो मेरे बहुत दिनों का कलेक्शन है। बहुत हैं, प्रत्येक का

इसी तरह गुण है। पैसेफिक भ्रमण के वक्त संग्रह करना ही हाबी थी मेरी। सोचता हूँ इसी पर एक पुस्तक लिखूँगा।'

जाने कैसी अस्वस्ती बोध हो रही है। सिर्फ बोध हो रहा है कि एक अमानुषिक गन्ध आ रही है—अग्नि की गन्ध, जले हुए मांस की गन्ध, भाग निकलने पर जैसे जान बचे। पर नौकरी! रायबहादुर के जरा कलम चला देने पर ही नौकरी मिल सकती है।

'हड्डियाँ इकट्ठी कर ली है पर मन्त्र नहीं पा सका—उसे किसी अनधिकारी को सिखाते नहीं वे। यदि पा जाता तो' रायबहादुर हंस पड़े—'यदि पा सकता तो कितना क्या कर बैठता, कौन जाने?—हो सकता था कि मन्त्र बल से समस्त पृथ्वी का रूप ही बदल जाता। और यह जो छोटा सा एक दाँत देख रहे हो, यह—'

अस्थि—राज्य से जब मुक्ति मिली, रात ग्यारह के आस पास थी।

अन्त में रयबहादुर बोले,—'यंगमैन, क्यों पचास-साठ रुपयों की नौकरी के लिये आते-जाते हो? बी करेजस! भाग्य की खोज में निकल पड़ो, नाम लिखाओ एक्टिव सर्विस में! सामने है समुद्र, पृथ्वी—क्लर्की करके क्या करोगे?

क्लान्त, निराश गले से मैंने कहा—'सो तो ठीक है, पर नौकरी मिलने पर—'

'इसी नौकरी नौकरी से ही तो उच्छन्न हो गया देश' रायबहादुर उद्दीप्त हो उठे—'तुम प्रमथ के लड़के हो। तुम्हारे बाप, हाट स्प्लेनडिड बाय ही वाज़! बाप का नाम रखना पड़ेगा तुम्हें। एक वैसी नौकरी के पीछे अपना फ्यूचर नष्ट न कर देना, आई विश यू सकसेस इन लाइफ। अच्छा गुडनाइट।'

'नमस्कार'

ब्लेक आउट की वजह प्रकाशहीन पथ पर उपदेश का बोझ गर्दन पर लादे भारी कदमों से आगे बढ़ा। ट्यूशन में आज जा नहीं सका। छात्र का बाप बनियां ठहरा। पाई-पैसा फिजूल खर्च नहीं करता। एक दिन की तनख्वाह काट लेना कोई बिचित्र बात नहीं।

सामने है डस्टबिन—पास ही के लैम्पपोस्ट से एक छोटा सा आलोक-चक्र पड़ रहा है उस पर तीन, चार मनुष्य कहे जाने वाले जीव उसके अन्दर हाथ डाल कर ढूँढ रहे हैं—खाद्य। कुछ ही दूर पर एक कंकाल मात्र कुत्ते की छाया पड़ रही है—नये प्रतियोगियों से भिड़ने का भरोसा नहीं है उसमें। लकड़ो की तरह हाथ पैर और बेलून की तरह पेटवाला एक छोटा बच्चा दोनों हाथों से क्या जाने क्या चूस रहा है प्राण पण से। हड्डी? हाँ, वही तो!

मैं ठठक कर खड़ा हो गया। जाने कहाँ एक दृश्य सा बोध हो रहा है—वही बलि दी गयी कुमारी लड़की की हड्डियों की तरह ही देखने में जिसके गुण से टाहिटा के आकाश पर रुधिराक्त मेघ दौड़ पड़ा, तूफान के साथ-साथ आग की लपटें लपट लेने लगीं, झर-झर करने लगी ताजे रक्त की वृष्टि। कलकत्ते के आकाश पर भी मेघ छाया है? ठीक से तारों को देख नहीं पा रहा हूँ। उसी काले आकाश का रंग आग की तरह लाल कब होगा, इस मैग्नोलिया की गन्ध मिश्रित मीठी हवा में आग की झलक कब झलकेगी, कब?

हड्डी उन्हें मिल गयी है, सिर्फ मंत्रसिद्धि करना ही बाकी है।

राष्ट्रभाषा-निर्माण की रोचक कहानी

राष्ट्रभाषा का संक्षिप्त इतिहास

इस के लेखक हैं
आधुनिक हिन्दी के आचार्य पण्डित
किशोरीदास जी वाजपेयी, जिन्होंने
राष्ट्रभाषा-निर्माण में दो पीढ़ियों
तक सक्रिय भाग लिया है
और अपने जीवन का एक
बड़ा भाग इसी के लिए
अर्पित कर दिया है।
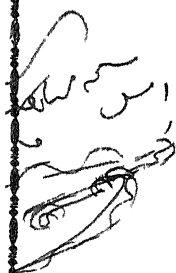
प्रकाशक

जनवाणी-प्रकाशन,

कलकत्ता।

जनता की दृष्टि के अनुसार

सब पक्षों का स्पर्श करते हुए, संक्षेप में कांग्रेस का सम्पूर्ण इतिहास उपस्थित करने वाली

सर्वश्रेष्ठ पुस्तक

कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास

लेखक

आचार्य पण्डित किशोरीदास जी वाजपेयी

सभी राजनैतिक पार्टियों के नेताओं का कहना है कि कांग्रेस का पूर्ण चित्र उपस्थित करने वाली यह पुस्तक जैसे प्रौढ़शिक्षण के लिए उपयोगी है, वैसे ही छात्रों के लिए एक अपूर्व देन है; और आलोचनात्मक होने के कारण उनको भी एक नवीन दृष्टि देगी, जिन्होंने अब तक के प्रकाशित वृहत् कांग्रेस-इतिहास पढ़े हैं।

प्रकाशक

जनवाणी-प्रकाशन,

कलकत्ता।